बया का घोंसला और सांप

डा0 लक्ष्मी नारायण लाल

सिकन्दरपुर से रामनगर की राह पर,
घनी अमराई के उस पार
टीले के समीप,
ताड़–वृक्षो पर झूलते हुए बया के सूने घोषले
जानते हैं
कि मैंने उस सांप को देखा है,
जिसका विष उसकी आंखों में था।

जब उस दिन टीले के पीछे दिन डूबने लगेगा, तब इस दूर तक फैली हुई अमराई की क्या शोभा होगी! आनन्द कल्पना करने लगा– केवल पेड़ों की हरी–मुलायम चोटियां सुनहरी हो जायेंगी, फिर सूरज की अंतिम किरनें इन हरी चोटियों में इस तरह मिल जायेगी, जैसे, कोई गीतों भरी मुस्कान धीरे–धीरे लाजबन्ती के सुनहरे घूंघट में खो गई हो।

और टीले के उस पार ?

जहां, दूर तक ताड़ के वृक्ष खड़े हैं, जिनके परिपार्श्व में अरहर और ऊख की लहलहाती हुई हरी खेती है। वहाँ उस पार तब ऐसा लगेगा, जैसे, टीले पर से कोई मस्त वाँसुरी बजाता हुआ उन हरे खेतों में आकर ठिप गया हो और कोई पायल बजाती हुई उसे ढूंढने के लिए खेत के मेड़ों पर बेकरार चक्कर लगा रही हो। वह बांसुरी की तान, वह पायल का संगीम, दोनों आपस में मिलकर धीरे–धीरे तब ऊपर उड़ने लगेंगे, और ताड़ के शिखरों पर छा जायेंगे, सिर सुनहरे पंख खोलकर उड़ जायेंगे।

आनन्द का घोड़ा पश्चिम की ओर बढ़ रहा था– वह ऊँचा टीला, वह घनी अमराई, वे हरे खेत और वे ताड़ के ऊँचें– ऊँचें वृक्ष सब शान्त थे। लेकिन ताड़ के पत्ते भी शान्त थे।

आनन्द जब उनके नीचे से गुजरने लगा तब उसे एकाएक आश्चर्य हुआ। उसने सर उठाकर देखा– ताड़ के पत्तें में बया के असंख्य घोंसले लटक रहे हैं। लेकिन ये घोंसले शान्त क्यों हैं? बसेरा का समय हो गया है, फिर तिनके के इन राजमहलों के राजा–रानी कहाँ हैं? उनके चीं–चीं करते हुए राजकुमार कहाँ है? आनन्द फिर अनुमान लगाने लगा। शायद उस टीले से उतरकर कोई विषैला साँप ताड़ के इन वृक्षों के पास आया होगा। उसने फन उठाकर अपनी जहरीली जबान कँपाई होगी और उसकी आँखों की छाया इन घोंसलों पर पड़ी होगी। फिर वे बया पक्षी अपने इन महलों को छोड़कर वे यहां से उड़ गये होंगे। तिनकों के खंडहरों को हवा में झूलते हुए छोड़कर वे यहाँ से उड़ गये होंगे और वे उस देश चले गये होंगे जहां आज का सूरज जा रहा होगा।

''आप बहुत चुप रहते हैं सरकार! हरदम कुछ सोचते रहते हैं क्या?'' घोड़े के पीछे चलते–चलते सरजू ने एकाएक पूछा।

आनन्द ने पीछे मुड़कर सरजू को देखा पर वह कुछ बोला नहीं।

''ठीक हे सरकार!'' सरजू ने संकोच पूर्ण शब्दों में कहा, ''मुझसे आप क्या बातें कर सकते हैं! मैं ज्यादा से ज्यादा गांव घर की बेमतलब की बातें करूँगा, आप तो सरकार .....।''

संकोच से सरजू की वाणी रूक गई और वह कुछ क्षणों के लिए चुप रहा। लेकिन उससे इस तरह देर तक न रहा गया। उसने फिर कहा, ''सरकार, बिला कुछ बोले–चाले रास्ता नहीं कटता, और सरकार अभी रामनगर यहाँ से पक्के दो कोस है।''

आनन्द ने घोड़े की रास में एक झटका दिया और उसने ताड़–वृक्षों की ओर संकेत करते हुए पूछा, ''उन घोंसलों में पक्षी नहीं बोलते क्या सरजू?''

''लटकते हुए उन बया के घोंसलों में सरकार!'' सरजू ने बड़े मनोयोग से कहा, ''बया तो बड़े मस्त पक्षी होते हैं सरकार् एक–एक तिनका जोड़कर घर बनाते हैं, उनमें गीत गाते हैं, फिर उन्हें छोड़ कर उड़ जाते हैं''

''कहाँ उड़ जाते हैं?'' आनन्द ने बालकों की तरह पूछा।

'' न जाने कहाँ उड़ जाते सरकार!''

''फिर वे गीत किसके लिए गाते हैं?'' आनन्द अपनी दुश्चिन्ताओं से हटता हुआ जैसे, विनोद का प्रयत्न करने लगा।

''मुझे क्या मालूम सरकार!''

सरजू चुप हो गया। आनन्द फिर सोचने लगा– पक्षी निर्लिप्त निरासक्त होते हैं, इसीलिए सुखी रहते हैं। वे आकाश में अधिक रहते हैं इसलिए गीत बहुत गाते हैं। और इसीलिए भी गीत बहुत गाते हैं, क्योंकि उन्हें यह पता ही नहीं कि वे गीत गाते हैं।

सरजू ने एकाएक फिर टोका– ''सरकार आप फिर चुप हो गये!''

आनन्द ने अपना सर घुमाया, सरजू को देखकर वह हँसने का प्रयत्न करने लगा। लेकिन उससे हंसा न गया, और वह पश्चिम की ओर देखने लगा। सूरज डूब रहा था। उसने मुड़कर देखा– अमराई, टीला, हरे खेत, ताड़ के वृक्ष, जिनके शिखरों से सचमुच, जैसे, सुनहरे पक्षियों के झुंड के झुंड अब उड़ने ही वाले हैं, उड़ रहे हैं– उड़ चुके हैं!

आनन्द का घोड़ा अब तेजी से अपने रास्ते पर बढ़ने लगा। साँझ घिरती आ रही थी और उसके घुँधलके में धीरे–धीरे उसकी उदासी चारों ओर फैलती जा रही थी। दूर–दूर के गाँव धुँए के परदों में ढँकने लगे थे। मैदान उदास हो चले थे। हरी ऊख के खेतों से ताजी मधु की–सी सुंगधि आ रही थी और अरहर के खेंतों से हरेपन में डूबी हुई धरती की सोंधी–सोंधी खुशबू चारों ओर फैल रही थी।

जुते–कमाए हुए खेतों की धरती मुलायम और साफ थी। उसमें आनन्द के घोड़े की खुर बार–बार घँसती जाती थी और घोड़ा हिनहिना उठता था। वह घोड़े को संभालता और दूर किसी गाँव में जलते हुए मट्ठी के चिराग को देखने लगता। परती–जमीन घासों से पटी थी और उस पार चलता हुआ आनन्द का घोड़ा मुँह–नाक और जबड़े की एक साँस से इतनी जोर का फुर्.....र' की आवाज करता था कि जिससे घास के छोटे–छोटे कीड़े–बोके, तितलियाँ और मेंढक के बच्चे आदि बुरी तरह से डरकर भाग निकलते थे।

सीता पड़ाव पार करने के बाद आनन्द का घोड़ा लकड़मंडी वाली सड़क की ओर बढ़ रहा था। गोधूल बीत चुकी थी, लेकिन रात का अंधेरा चौथ की चाँदनी के कारण आकाश से नीचे उतर सका था। सरजू अब आनन्द के घोड़े के आगे–आगे चल रहा था। और आनन्द की बेतरह चुप–उदास पाकर वह भी जैसे, उसके समर्थन में उसी तरह चलता जा रहा था। कुछ देर के बाद वह अपने–आप कहने लगा, ''क्या जमाना आ गया है सरकार! .ओ हो .....हो...। इसे तो धँस जाना चाहिए!..... रामनगर की जो हाल ही पूछिए। अजीब कस्बा है सरकार। मैं चार साल से तहसीलदार साहब के साथ हूँ, लेकिन मैं तो नह–नह पक गया। न जाने कैसे लोग हैं यहां के् न किसी का दुःख जाने न दर्द, बस अपनी–अपनी घात! सरकार तो हमारे लिए अस्पताल खोलती है, लेकिन सरकार, यहाँ अच्छे डाक्टर क्यों नहीं आते? ..... . यहाँ वह जो चड्ढा डाक्टर है न, बड़ा अपराधी है। मेरी चले तो मैं बेईमान का गला काट दूँ!''

आगे सरजू कुछ क्षणों के लिए चुप हो गया, फिर घूमकर उसने नम्रता से पूछा, ''क्या सोच रहे हैं सरकार?''

''कुछ नहीं! आनन्द ने सर हिलाया।

कुछ दूर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। सरजू आनन्द के शान्त–मौन रूप से कुछ–कुछ परिचित था। उस खामोशी के पीछे द्वन्द्व का क्या रूप है, किसकी भयानक छाया है ? उसे सब पता था, इसलिए सरजू बार–बार प्रयत्न करता था कि आनन्द सरकार कुछ बोलें, उनका मन कहीं और चला जाय। इसीलिए सरजू के मन में जो बात अपनी अभिव्यक्ति पाने के लिए आँधी बन रही थी, उसे वह करीने से पीता चल रहा था और वह आनन्द की खामोशी को किसी और दिशा में ले जाकर तोड़ना चाहता था।

''लखनऊ तो अच्छी जगह होगी सरकार, ... है न!''

आनन्द ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वह अपने द्वन्द्व और चिन्तन में इतना आत्मसात था कि, जैसे घोड़े की पीठ पर मात्र उनका शरीर बैठा था। और वह, वह स्वयं कहीं और गया हुआ कोई फैसला सुन रहा था।

उसके हाथ में घोंड़े की लगाम बिल्कुल ढीली पड़ गई थी। सरजू ने देखते ही, दौड़कर उसे सम्हाल लिया।

''सरकार सो रहे हैं क्या?''

''नहीं तो!'' आनन्द ने जैसे जागते हुए कहा, ''क्यों क्या हुआ?''

''जरा सँभल कर लगाम पकड़े रहिए सरकार, अंधेरा है और जानवर का मामला।''

सरजू अब आनन्द के बराबर से चलने लगा। आनन्द न जाने क्यों, किस बात से, स्वयं अपने पर झुँझला उठा।

''कुछ बात करो सरजू!'' आनन्द ने उदासी से कहा।

''मैं तो सरकार करता ही चला आ रहा हूँ।'' उसने असीम प्रसन्नता से कहा, ''लेकिन आप तो सरकार .....!''

''मेरी छोड़ों, कुछ अपनी कहां!'' आनन्द ने मुस्करा कर कहा। सरजू का मन सन्तुष्ट हुआ, उसने तत्काल पूछा, ''सरकार, लखनऊ आपका ननिहाल है न!''

''उसे मेरा घर कहो सरजू!'' आनन्द ने कहा ''माता जी के देहान्त के बाद, नाना जी मुझे गोंडा से लखनऊ–अपने पास ले गये और उन्होंने बच्चे के रूप से मुझे वहाँ इस रूप में बनाया।'' यह कहकर आनन्द रूक गया, और जल्दी से उसने पूछा, ''रामनगर अभी बहुत दूर है क्या?''

सरजू ने उत्साह से उत्तर दिया, ''नहीं तो सरकार! बिलकुल पहुँच गये। सामने देखिए, वह चन्दाताल है न! और वह लकड़मंडी वाली सड़क है। बस, अब तो रामनगर दो ही मील रह गया सरकार!''

दीनूटोला पार करते ही आनन्द का घोड़ा लकड़मंडी वाली सड़क पर आ गया। सरजू ने विश्राम की एक लम्बी साँस ली और अपने आप से उसने कहा, ''अपने राम तो एक बीरा सुरती खाएँगे।'' यह कहकर वह हथेली में कच्ची सुरती बनाने लगा और आनन्द की ओर आँख नचाकर कहने लगा, ''सरकार! आप तो कुछ खाते–पीते ही नहीं, पान तक नहीं खाते!''

आनन्द सरजू की बातों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दे रहा था। उसका घोड़ा सड़क से बढ़ रहा था और वह सड़क के बांयी ओर देखता हुआ कुछ और सोचने लगा था। वह चन्दाताल कितना लम्बा चौड़ा है। उसके फैलाव में जैसे, कोई संकोच नहीं है, फिर भी वह कितना सूना–उदास है। लखनऊ शहर के किनारे अगर कोई तालाब होता तो उसकी कितनी अपार पूजा होती! उसके किनारे लखनऊ का नैनीताल बसता, या उससे बिजली तैयार की जाती। लेकिन इस सड़क के किनारे पड़ा हुआ चन्दाताल कितना गरीब है।

ठीक उसी समय तालाब से सारस का जोड़ा बोल उठा– ''कों.....कों....कुं...कुं।'' क्यों, क्यों? सारस की बोली में जैसे ये प्रश्न, वे विरोध तालाब में फैलते हुए आनन्द के पास आए और उसके चिन्तन की दिशा बदल गये और आनन्द का भावुक मन सोचने लगा, चन्दाताल अपने में धनी है मनुष्य जब उसमें हाथ लगाएगा, तब वह गरीब अवश्य हो जायेगा। तब न उसमें जंगली घास, न जलकुंभी, न सैबाल होगा, फिर उसमें इतनी मछलियाँ न होंगी। उसमें कमल के फूल और कुमुदनी की ढोडियाँ न होगी। क्योंकि मनुष्य वहाँ बिहार करने लगेगा और जब वहाँ मनुष्य की कोठियाँ होगी, तब वहाँ तालाब के पक्षी न होंगे– मुर्ग, तीतर, सुर्खाब, सैनाह, बत्त, कौआरी, लालसर और सारस के जोड़े न होंगे। तब तालाब के इन पक्षियों को भी उसी देश उड़ जाना होगा जहाँ वृक्ष के वे बया पक्षी उड़ गये होंगे।

आनन्द अपने आप में उलझा हुआ, चुप–निश्चेष्ट चल रहा था। सरजू कोई बात अवश्य करता चल रहा था, लेकिन आनन्द का ध्यान उधर बिल्कुल न था। उसका मन अब सूनी सड़क के दोनों ओर फैले हुए हरे मैदान के विस्तार पर बहुत तेजी से दौड़ रहा था। ये हरे खेत, यह अछूती–कुंआरी धरती, ये जोते हुए खेत, ये काले–काले गाँव, यह झुका हुआ आकाश और यह शून्य, जिसे भेदता हुआ उसका घोड़ा चला जा रहा था– भागता जा रहा था और आनन्द अपने अंत–क्षितिज में देखता जा रहा था। यह रामनगर है– एक छोटा सा कस्बा। यह तहसीलदार, कामता प्रसाद जी हैं– मेरे पिता। यह उनकी हवेली है। यह मैदान–सा चौड़ा आँगन, और यहाँ प्रभा माता जी रोते हुए नन्हें को अपनी गोद में लिए हुए पलंग पर लेटी है। नन्हा सो नहीं रहा है और प्रभा जी उसे सुलाने के प्रयत्न में हैं। बरामदे में गीता तस्बीरों से भरी हुई कोई किताब उलट–पुलट कर देख रही है। उसकी घुँघराली अलकें बार–बार उसके मुँह तक आ जाती है और वह हर दो क्षणों के बाद अपने सर को इतनी तेजी से ऊपर झटकती है कि बहकी हुई अलकें अनायास कुछ क्षणों के लिए उसके सर के घुँघराले वालों से सिमट जाती है। चौके में एक ओर रत्ती बैठी हुई आटा गूँध रही है और दूसरी ओर आग के सामने विधवा पारो बुआ बैठी खाना बना रही है। बुआ पसीने से तर है और वह बार–बार अपने सूने सफेद आँचल से मूँह के पसीने को पोंछती हुई सोच रही है।– हाय! अब तक नन्दू नहीं आया! वह चौके से उठती है और बाहर दरवाजे पर आकर सामने सड़क की ओर देखने लगती है– नन्दू अभी नहीं आया। दरवाजे पर छप्पर की बारहदरी में तहसीलदार साहब बैठे हैं। सामने फर्शी ताब पर है। उनके चारों ओर लोगों की एक भीड़ बैठी है। तहसीलदार साहब हँस रहे है और बीच–बीच में वे फर्शी की नली से कस भी लेते जा रहे हैं और दबे–पाँव सुभागी आ रही है, नीचे देखती हुई। धीरे से घर में चली जा रही है। लेकिन क्यों जा रही है।?

सुभागी की याद आते ही आनन्द की आँखों में जैसे कुछ कँप गया। उसे लगा कि उस खुले मैदान में भी उसका दम घुटने लगा हो। जिस बात से वह अपने अर्न्तमन से लड़ता हुआ गौर स्टेशन से यहाँ तक चला आया, वह बात, वह सुभागी का व्यक्तित्व, उसकी पूरी करूणा, जैसे उस क्षण एकीकृत होकर एक ऐसी आँधी बन गई जो आनन्द

के अन्तःक्षितिज से उठकर एकाएक उसके समूचे व्यक्तित्व पर छा गई हो। आनन्द घोड़े पर चलता हुआ दूर देखने लगा कि वह आँधी है, कितनी धूल उड़ रही है। धूल में पलास–सेमर के टूटते हुए फूल उड़ रहे हैं। और उस खुँखार आँधी के बीच खड़ी है सुभागी। वह रो–चीख नहीं रही है, खड़ी है, बाएँ हाथ से उसने अपने समूचे मुँह को ढँक लिया है। उसकी आँखें बन्द हैं और उसका दांयां हाथ आँधी में सामने फैला–तना हुआ है और वह हाथ जैसे किसी को पुकार रहा है।

आनन्द ने घबड़ाकर सहसा पूछा– ''सुभागी कैसी है सरजू?''

आनन्द घोड़ा रोके खड़ा हो गया। चाँदनी में स्पष्ट दीख पड़ रहा था कि उसका ललाट पसीने से तर है और उसकी साँसे इस तरह तनी हुई चल रही है, जैसे वह न जाने कितनी दूर से भागा चला आ रहा है। सरजू घबड़ा गया। लेकिन साहस बटोर कर उसने कहा, ''सरकार.....।''

फिर कुछ क्षणों तक सरजू मौन रहा, और आनन्द की साँसों में बेचैनी चल रही थी।

''सुभागी कुशल से है न?'' आनन्द ने फिर घबड़ाहट से पूछा।

''कुशल क्या सरकार!'' सरजू ने बताया, ''आज पन्द्रह दिन हुए उसके पति रामानन्द का स्वर्गवास हो गया!''

''स्वर्गवास! रामानन्द मर गया!!'' आनन्द उसी जगह स्थिर हो गया। धीरे–धीरे उसकी फूलती हुई साँसों में जैसे, बर्फीली हवा टकराने लगी हो और उसके अन्तर्मन की आँधी जैसे, वर्षा की तूफानी रात बन गई हो वह अपने आप में ठिठुरने लगा। तभी सरजू ने बताया कि पांच दिन हुए सुभागी रामनगर को छोड़कर अपने गाँव सिकन्दरपुर चली गई।

आनन्द जब रामनगर पुहचा, उस समय रात के दस बज रहे थे। कातिक के दिन थे। कस्बे के अधिकांश लोग अपने–अपने घरों में सो गये थे। कामता प्रसाद अपने कमरे में खाना खा रहे थे। उनकी पत्नी प्रभा उनके पास बैठी थी। नन्हा और गीता दूसरे कमरे में सो चुके थे। पारों बुआ अभी चौके की दालान में, फर्श पर बैठी थी और रत्ती से बातें कर रही थी।

आनन्द ने दरवाजे से जब घर में प्रवेश किया तब उसे लगा कि सब लोग सो गये हैं। उसने बुआ को पुकारते ही देखा कि वह स्वयं दौडी हुई उसी की ओर आ रही थी। रत्ती ने सब सामान संभाला और आनन्द के लिए कुर्सी ला कर वह तेजी से तहसीलदार साहब के कमरे की ओर बढ़ गयी।

प्रभा कामता प्रसाद के कमरे से निकल कर उस समय आनन्द के पास आई जब वह चाय पी चुका था। माँ को देखते ही उसने अभिवादन किया और फिर उसने बरामदे को पार कर, कमरे के दरवाजे से ही पिता जी को नमस्कार किया। वे खाना समाप्त करके पलंग पर लेटे थे। उसी स्थिति में उन्होंने आनन्द का नमस्कार स्वीकार किया, लेकिन एक दूसरे की यह इच्छा न हुई कि वे पास आएँ– चाहे पिता–पुत्र के पास, अथवा पुत्र–पिता के पास। यद्यपि दरवाजा बिल्कुल खुला था, उस पर केवल एक महीन कपड़े का पर्दा पड़ा हुआ था, लेकिन उस खुले हुए दरवाजे पर आनन्द के लिए एक ऐसी अदृश्य दीवार खड़ी थी, जिसे वह कभी नहीं पार कर सकता था, उसे छू तक नहीं सकता था। इस तरह, उस दीवार के पीछे उसके पिता का वह कमरा था, जिसमें वह आराम कर रहे थे और दीवार के सामने आनन्द, उनका बेटा खड़ा था।

पत्थर की चौकी पर रत्तर आनन्द के हाथ–पैर धुला रही थी। रत्ती चुप–उदास थी। आनन्द को उस सूने आँगन में ऐसा लग रहा था, जैसे उसकी दीवारों से कोई लगा हुआ धीरे–धीरे रो रहा हो।

''सुभागी अब रामनगर में नहीं है रत्ती!'' आनन्द ने अदास स्वर में पुछा।

''नहीं बाबू! वह तो अपने गाँव चली गयी'', रत्ती की उदासी भंग हुई और वह बताने लगी, '' उसका पति रामानन्द मर गया। वह रोती–रोती पागल हो गयी बाबू! फिर उसके गाँव, सिकन्दरपुर के लोग आये और उसे जबरन गाँव वापस ले गये।''

चौके से सहसा बुआ की आवाज आयी। खाना ठंडा हा`रहा था। आनन्द आंगन से चौके में आया और भोजन करने लगा।

''तू इतना उदास क्यों है भइया?'' बुआ ने पूछा।

''मैं... नहीं तो।''

''नहीं क्या।'' बुआ ने कहा, ''उदास तो है, लेकिन भर पेट खाना खा लेना। मैं आज सुबह से तेरी बाट जोह रही थी।''

आनन्द चुपचाप खाना खा रहा था। उसकी दृष्टि नीचे ही थी। बआ ने फिर पूछा, ''क्या सोच रहे हो भइया?''

''कुछ तो नहीं।''

क्षण भर में आनन्द ने भोजन समाप्त कर दिया और वह चौके से उठ कर आँगन में चौकी के पास चला आया। रत्ती लोटे में पानी लिए खड़ी थी। आनन्द का कुल्ला कराते हुए रत्ती ने फिर धीरे –धीरे बताया, ''बाबू! सुभागी आपको बहुत याद कर रही थी। मैं जितना ही उसे समझाती थी उतना ही वह रोती थी। बाबू! जब वह राम नगर छोड़ रही थी तब सकी बड़ी बुरी हालत थी। यहां के सब लोग उसे 'थू–थू' कर रहे थे। तहसीलदार साहब ने हुक्म दे रक्खा था कि वह चौबीस घंटे के अन्दर रामनगर छोड़ दे। जिस सुबह वह रामनगर छोड़ने वाली थी, उस रात को मैं छिपकर उसके पास गई थी। वह न जाने कितनी देर तक मुझसे लिपटकर रोयी थी। बस, आपको याद करके मुझसे पूछती थी, ''मेरे बाबू कब आयेंगे रत्ती? तू उनसे बता देना कि अब सुभागी भी मर जायेगी।''

सहसा आनन्द रत्ती के पास से दूर हट गया। वह बरामदे को तेजी से पार करता हुआ दरवाजे की ओर बड़ा और बाहर आ गया। उसका मस्तिष्क कह रहा था कि वह बाहर खुली हवामें टहले और वह किसी से बात न करे– न रत्ती से, न पारों बुआसे, न सरजू से और वह अपना मूंह भी किसी को न दिखाए। वह टहलता–टहलता अपने ापको इतना थका दे कि यहीं नंगी जमीन पर गिर पड़े और सो जाये। लेकिन उसका मन कह रहा था कि वह पारो बुआ के पास बैठे, रत्ती को बुला ले, सरजू को पास खड़ा कर ले और वह सुभागी की एक–एक बात सुने। रामानन्द उसके पति का वह मर्ज उसकी दशा, उसकी मृत्यु, उसका विवरण, सुभागी की करूणा, तहसीलदार साहब का दृष्टिकोण, उसके सारे पैतरे और रूख, सुभागी का रामनगर छोड़ना और उसके एक–एक आँसू का विवरण जो उसके यहाँ गिराया होगा। दोनों विरोधी भावनाएँ एक–एक करके उाके व्यक्तित्व को चिन्तन की भँवर में डुबा जाती थी और वह स्पष्ट रूप से कुछ तय नहीं कर पा रहा था कि वह सुने–सोचे, बातें करे अथवा एकाकी टहले, बैठे या सो जाए, या कहीं छिप जाए!

बुआ ने दरवाजे से पुकारते हुए कहा, ''भइया रात अधिक बीत गई है, आओ सो जाओ।''

लेकिन आनन्द बारहदरी के सामने घास के मैदान में खड़ा रहा। बुआ पास आई और वह आनन्द के दायें हाथ को पकड़ कर घर में ले जाने के लिए आतुर हो गई।

भीतर बरामदे में एक ओर पारो बुआ, दुसरी ओर आनन्द, दोनों अपने–अपने पलंग पर लेटे थे। रत्ती आँगन में बर्तन मल चुकी थी और चौकी पर अपने हाथ–पैर धो रही थी। आनन्द बिस्तरे पर पड़ा हुआ रत्ती को देख रहा था, जिसकी छाया आँगन की दीवार पर पड़ रही थी।

रत्ती जब आँगन से बरामदे में आई और अपनी खाट पर आने के पहले उसने चिराग बुझाया, तब आनन्द आँगन के अंधकार में एक डोलती हुई छाया देखने लगा। छाया दीवार से नहीं, बल्कि जमीन से लगी हुई आँगन में डोल रही थी। वह छाया लँगड़ा–लंगड़ा कर चल रही थी, और धीरे–धीरे कराह रही थी। उसी समय आनन्द ने अंधकार में देखा, एक दूसरी छाया दीवार से सरकती हुई आँगन में उतरती है। उसके हाथ में बाँस की उस छड़ी को लँगड़ाती हुई छाया के हाथ में पकड़ा देती है और स्वयं उसे सहारा देती हुई आँगन में चक्कर लगाती रहती है।

सहसा बुआ ने पूछा–''नींद नहीं आ रही है भइया!''

''आ जायेगी!''

''तुम थक गये हो इसी बजह से, रूको मैं तुम्हारे सर पर तेल रखती हूँ'', यह कहते हुए बुआ उठी और शीशी का तेल लिए हुए आनन्द के सराहने बैठ गई। आनन्द बुआ को मना करना चाहता था लेकिन बुआ के स्नेह, उसकी मातृत्व गरिमा के सामने वह सदा अपने को एक शिशु की भाँति पाता था, अतः उसकी हिम्मत न हुई कि वह बुआ के प्रस्ताव का विरोध करे।

बुआ चुपचाप आनन्द के सर पर तेल लगा रही थी। और आनन्द पलकें मूँदे हुए भी भीतर आँखें खोले हुए था। पलकें पारो बुआ को दिखाने के लिए मुँदी थीं, जिससे उसे सांत्वना मिले कि उसका नन्दू सो जा रहा है। लेकिन उसकी आँखें भीतर इसलिए खुली थीं, क्योंकि उनमें वही आँगन की दोनों छायाएँ डोल रही थीं।

आधा घंटा बीत गया, पारो बुआ उसी तरह आनन्द के सर पर तेल लगा रही थी। उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि नन्दू अब सो गया। लेकिन आनन्द की दशा अजीब हो रही थी। सर के तेल की ठंडक और मालिश की धीमी–धीमी ऊष्णता, उसकी पलकों पर नींद बन कर छा जाना चाहती थी, और उसकी पलकें भारी हो रही थीं। लेकिन दूसरी ओर उसकी आंखें में जैसे, कडुआ धुआँ भर रहा था। उसे लग रहा था, जैसे, वह सोया नहीं है, दौड़ रहा है। बहुत तेजी से

दौड़ता हुआ किसी मरूस्थल को पार कर लेना चाहता है, लेकिन वह मरू की आँधी में फँस गया है और रेत के कणों से उसकी आँखें पटती जा रही है। इस तरह पलकों में नींद की कड़ आहट और आँखों की पुतलियों में रेते के धुएँ से आनन्द बेचैन हो रहा था।

''तुम सो जाओ बुआ, मुझे लगता है, आज नींद नहीं आयेगी।'' आनन्द के सत्य ने उसे स्पष्ट कीने को विवश कर दिया, ''मैं चाहता हूँ बुआ कि तुम सो जाओ!''

''फिर मुझे कैसे नींद आ सकती है!'' बुआ ने मालिश करते हुए कहा।

''तो कोई बात ही करो बुआ'', आनन्द ने करबट बदलते हुए कहा, ''तब शायद मुझे नींद आ जाये!''

बुआ सब बातें समझ रही थी। उसे यह पता था कि आनन्द को क्या हुआ, आते ही वह किस गोली से घायल हो गया। वह क्यों उदास है? उसे नींद क्यों नहीं आ रही है? और वह मुझसे क्या बातें करना चाहता है? बुआ सोच रही थी, आनन्द जिन बातों में पड़ा है, जिसे सोच रहा है, जिसे वह मुझसे सुनना चाहता है, बातें करना चाहता है, उसे नींद कहीं नहीं है। उसमें आग है, धुँआ है, विष है। लेकिन मुझे आनन्द को सत्य का दर्शन तो कराना ही होगा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। और आने वाले कल में खतरा भी तो खड़ा हो सकता है। कल सत्य को झूठ में छिपाकर, अथवा सत्य को झूठ बनाकर न कोई आनन्द से कह दे। उनके किनारे हित–दोस्त–दुश्मन सब तरह के आदमी हैं। नन्दू के भोले मस्तिष्क में कोई और तरह का जहर घोल सकता है। लेकिन तब आनन्द की नींद? बुआ सोचते–सोचते यहाँ रूक गई। उसी समय आनन्द ने बच्चों की भांति पूछा, ''बुआ, सुभागी को क्या हुआ, रामानन्द कैसे मर गया?''

पारों बुआ बड़ी देर तक चुपचाप आनन्द के बालों में उँगलियाँ फेरती रही फिर एक क्षीण स्वर में उसने बताना शुरू किया, यहाँ से उस बार, तुम्हारे लखनऊ चले जाने के बाद सुभागी ने हवेली में आना–जाना छोड़ दिया। उसी बीच एक दिन रामानन्द की हालत खराब हो गयी, उसके हाथ–पाँव ठंडे हो चले। शाम को तहसीलदार भइया को यह खबर मिली, वे स्वयं दौड़े हुए उसे देखने गए। फौरन डाक्टर चड्ढा को बुलवाया, सूइयाँ दिलवायीं और वहाँ चड्ढा की ड्यिूटी लगा दी। रामानन्द की जान बच गई और दो दिनों में वह फिर अपनी हालत पर आ गया। इसके बाद से, सुभागी हवेली में कभी–कभी आने–जाने लगी। पता नहीं, एक दिन क्यों, प्रभा भाभी ने सुभागी को बहुत गालियाँ दीं, उसे कलंक तक लगाया। उसी क्षण से सुभागी ले फिर यहाँ आना–जाना एकदम छोड़ दिया। यद्यपि उस रात को तहसीलदार भइया ने प्रभा भाभी को उसी बेंत से दो बेंत मारा था और वे स्वयं सुभागी से माफी माँगने उसके घर तक गए थे।''

''तब, क्या हुआ? फिर क्या हुआ!'' आनन्द उठ बैठा।

''फिर हवेली में बुलाने के लिए, उन्होंने बहुत कहा, मुझे भेजा, रत्ती को बार–बार भेजा, लेकिन वह न आयी। हार कर एक दिन से स्वयं सुभागी को बुलने गए। बहुत समझाया, अंत में उसे धमकाया भी। लेकिन वह अपने संकल्प पर अटल थी, उसने साफ कह दिया, ''मेरा घर है, मेरा पति है, घर का मैं हर महीने किराया देती हूँ, अपने पति की मैं सुहागिन हूँ। फिर मुझे किसी से क्या डर? इससे भी बुरा मेरा क्या कर लेगा कोई!'' तहसीलदार भइया लौट आए!''

यह कहते–कहते बुआ की वाणी एकाएक रूक गई। कुछ क्षणों के बाद उसने जल्दी से कहा, ''संयोगवश उसके तीसरे ही दिन रामानन्द मर गया!''

''कैसे, क्यों मर गया?'' आनन्द उठता हुआ, बच्चों की तरह मचल पड़ा।

''भइया, कई तरह की लोग बातें करते हैं'', बुआ ने करूणा के स्वर से कहा, ''सुभागी कहती थी कि रामानन्द की दवा में जहर मिलाया गयाथा, जिसे पीते ही वह छटपटा कर मर गया। तहसीलदार भइया और डाक्टर चड्ढा ये दोनों कहते थे कि सुभागी ने स्वयं उसे जहर दिया। और भी तरह–तरह की बातें हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि भइया, कि रामानन्द अपने कोढ़ के मर्ज से इतना घबड़ा गया था कि वह स्वयं जहर खाकर मर गया।

''स्वयं जहर खा कर मर गया!'' आनन्द ने जैसे स्वयं, अपने से पूछा।

''हाँ, मेरी मानो भइया! सच्च, यही बात! तुम किसी की न मानो!''

आनन्द दीवार के सहारे खड़ा था। पारो बुआ खाट पर बैठी थी।

सुभागी ने रामानन्द के शव को किसी से न छुलाया। ट्रक पर उसे रखवाकर वह अयोध्याघाट गयी। स्वयं उसने अन्तिम संस्कार क्रिया की। यहाँ उसने यथाशक्ति सब अन्तिम उपचार किये। तहसीलदार भइया ने उसे फिर बहुत समझाया, हवेली में रखने के लिए अनेक प्रयत्न किये। उसे पढ़ने की सलाह दी। यहाँ की कन्या पाठशाला में उसे नौकरी दिलाने लगे। लेकिन वह अपने घर में बंद, सिवा रोने के और कुछ नहीं सूझता था। तहसीलदार भइया अन्त में

बहुत बिगड़े और जब वे पूर्ण निराश हो गये, तब उन्होंने हुक्म दिया कि सुभागी चौबीस घंटे के अन्दर रामनगर छोड़ दे। सिकन्दरपुर के आदमियों को उन्होंने बुलाया और सुभागी जबरन यहां से घसीट ले जायी गयी।

रात काफी बीत चुकी थी। आनन्द निश्चेष्ट अपने बिस्तर पर पड़ा था। आँगन में, वह देख रहा था, वे दोनों काली छाया अब तक डोल रही थी। एक छाया लँगड़ी थी, दूसरी छाया उसे सहारा दे रही थी। आनन्द आँगन के अंधकार में अपलक देख रहा था। रात बीतती जा रही थी। पारो बुआ भी सो गयी, सब सो गये, पूरा रामनगर कस्बा सो रहा था। लेकिन आनन्द जग रहा था, उसकी कोई वृत्ति नहीं हो सकी थी, सब वृत्तियाँ सचेत जग रही थीं। उसके अंतःक्षितिज में हवेली का वह आँगन फैला था, और उस आँगन में वे डोलती हुई दोनों छायाऐं थीं। एकाएक आनन्द को लगा, जैसे मनुष्यों की एक अपार भीड़ शोर करती हुई, चिल्लाती हुई आँगन को घेर रही है। वे दोनों छायाऐं भागने के लिए रास्ता ढूँढती हैं! लँगड़ी छाया डर कर जमीन पर गिर पड़ती है। दूसरी छाया भाग निकलती है, लोग उसका पीछा करते हैं और वह भागती जाती है, भागती जाती है। .....

कस्बा रामनगर धनुषाकार बसा था। सड़क को आधार बनाकर उसका दक्षिणा सिरा आरम्भ होता था और पश्चिम में अर्द्धवृत्ताकार फैलकर उसका सिरा घूमता हुआ सड़क के उत्तरी छोर पर समाप्त होता था। आबादी से दक्षिण ओर की भूमि कछार थी। और यह कछारी भूमि पक्के चार सौ बीघे के क्षेत्रफल में फैली हुई थी। इसमें तीन छोटे–छोटे ताल और नाला था, बाकी जमीन में जड़हन की इतनी उम्दा पैदावार होती थी कि अगर इसमें सरजू की बाढ़ न आए अथवा एकदम सूखा न पड़ जाए, तो इस कछार की एक पैदावार से पूरे वर्ष रामनगर की जनता जी सकती थी। दोनों तालों में सैकड़ों मन सिंघारा होता था, सैकड़ों मन मछलियाँ होती थीं और ताल के सूखने पर उसमें कबलगट्टे और भँसीड़ (कमल की जड़) की पैदावार होती थी। नाले में तीना चावल की पैदावार होती थी और नाले के सूखने पर उसके कीचड़ में मनों गिरई और मूँगरी मछलियाँ मिलती थीं। यही कारण था कि रामनगर कस्बे के दक्षिणी सिरे पर, पूरब से लेकर पश्चिम छोर तक मुख्यतः करमी, अहीर, माझी और चमारों की बस्ती थी। इस ओर खास सड़क पर ताड़ी की दो दुकानें थीं। इसी के पास सड़क पर इक्के और ताँगे का अड्डा था, यहाँ चार मिठाई की दुकान, और सात पान वालों की दुकानें थीं।

और कस्बे की आवादी से उत्तर की ओर भूमि परती थी। और एक बहुत लम्बा–चौड़ा आम का बाग कस्बे के पश्चिमी छोर से पूरब तक फैला था। बाग का फैलाव सड़क तक आकर नहीं समाप्त हुआ था, बल्कि सड़क से पूरब तक भी इसका बिस्तार था। कस्बे के इस दक्षिणी सिरे पर राजा बाँसी की कोट थी और उन्हीं के द्वारा संचालित कोट के पास ही एक दुर्गा का मन्दिर, एक धर्मशाला, एक गोशाला और एक संस्कृत पाठशाला थी। इसी सिरे पर, सड़क से पूरब, बाग के दक्षिणी छोर में हफ्ते में हर शनिवार के दिन बैलों का एक बहुत बड़ा बाजार लगता था, जिसमें गोंडा, बहराइच, और नानापारा तक के बैल बिकने आते थे।

सड़क से सीधे पश्चिम, कस्बे में एक सड़क जाती थी और इसी सड़क के दोनों ओर कस्बे की आत्मा बस्ती थी। साहूकार, बनिया, छीपी, कुन्दीगर, बर्तन वाले, ठठेर, सुनार, दर्जी, हलवाई, बजाज आदि सब तरह के कारोबारी और व्यवसाइयों की दुकानें और घर दोनों थे। इसी सड़क पर दांयी ओर, प्राईमरी स्कूल और डाकखाना था, और उससे आगे चलकर सड़क की बायीं ओर लड़कियों की पाठशाला थी, जिसका नाम ''सेठ हीरालाल, ननको देवी कन्यापाठशाला।'' इसी सड़क पर दांयी ओर उक गली में औरतों का एक छोटा सा अस्पताल भी था, जिसे एक ''मिडवाइफ'' अपने बूते पर चला रही थी और पूरे कस्बे के अच्छे परिवारों–घरों में उसकी इज्जत और पहुँच थी।

मूल सड़क से पूरब की ओर रामनगर की तहसील थी। तहसील काफी लम्बी–चौडी बनी थी। उससे कुछ हटकर तहसीलदार साहब की पक्की हबेली थी। फूलों पौधों और तरकारियों से भरा हुआ उनका एक बागीचा था। उसके पास ही एक कच्चे से कमान में उनके गाय–भैंस की घारी थी। उससे मिला ही हुआ उनके घोडे का अस्तबल था, और वहीं सरजू का क्वाटर भी था।

तहसीलदार साहब– कामता प्रसाद जी को रामनगर तहसील में रहते हुए सात वर्ष बीत गये थे। ये सन् पैतालिस में खलीलाबाद तहसील से बदलकर यहाँ आए और तब से यहाँ के तहसीलदार थे। पिछले सात वर्षों में पूरी तहसील, पूरा इलाका और इसके खास–खास गाँवों तक में इनकी धाक जम गयी और बहुत यश भी इन्हें मिला। रामनगर के दक्षिण कछार में इनकी भी पक्के बीस बीघे जड़हन की खेती थी जिसे इन्हें न जोतना पड़ता था, न बोना, न काटना, बस अगहन में बीस बीघे जड़हन की पैदावार इन्हें आराम से मिल जाती थी।

कामता प्रसाद की अवस्था पैतालिस वर्ष की हो चली थी। इन्होंने तय कर लिया था कि जिन्दगी के शेष दिन इसी रामनगर में कटेंगे। पेन्शन लेकर यहीं एक मकान बनवाकर ये अपना शेष जीवन व्यतीत करने का स्वर्णिम स्वप्न

देखते थे और उसकी सबल पृष्ठभूमि इन्होंने यहाँ ना रक्खी थी और दिन–रात उसकी सबलतर बनाने की चेष्टा में रहते थे।

इनकी हवेली से दक्षिण, काँजी हाउस था, और पास ही वहाँ के मुन्शी का क्वार्टर था। उससे लगा हुआ डिस्ट्रक बोर्ड का अस्पताल था और पास ही जानवरों का भी अस्पताल अभी पिछले ही महीने खुला था, लेकिन अभी तक उसके लिए कोई डाक्टर नहीं आ सका था। पास ही एक नया–नया मिडिल स्कूल खुला था, जिसमें अँग्रेजी की भी पढ़ाई आरम्भ हुई थी।

सड़क पर मूलतः मिठाई, पान, बीड़ी, भुँजा सत्तू की दुकानें थीं। इनके अतिरिक्त एक पवित्र–भोजनालय भी अभी हाल ही में खुला था और इससे दूर मुसलमानों की भी दो चाय की दुकानें थीं, जिनमें चाय के अलावा गोश्त–रोटी भी मिल सकती थी।

इस तरह रामनगर एक ऐसी जगह थी जो शहर और गाँव के बीच का एक सुन्दर रूप था। इसमें शहरीयत भी थी, राजापन और जमींदारी की भी बू थी, इसके अतिरिक्त इसमें किसान, मजदूर, कर्मचारी और विभिन्न पेशे वालों का कोई न कोई रूप अवश्य था। यहाँ का प्रातःकाल गाँव का सा होता था, दोपहर छोटे शहर का सा होता था, मध्यान्ह धूल से पट जाता था, और इसका रूप गाँव के एक अच्छे मेले की भाँति हो जाता था।

और संध्या!

यहाँ की संध्या एक अजीब तरह की होती थी– उदासी–थकान, फिर भी चहल–पहल और आनन्द–विहार की गति का एक अद्‌भुत समन्वय लिए हुए। धूल शांत हो जाती थी, कस्बे की सड़क का मेला थम जाता था, और इस शांत थमाव के ऊपर कस्बे का धुँआ सारे वातावरण को उदास कर देता था और ऐसी संध्या में कहीं बैट्री के रेडियो बोलते थे, कहीं ग्रामोफोन के रिकार्ड और कहीं हँसी और कहकहे। शाम जब बूढ़ी होने लगती थी तब कस्बे का धुँआ धीरे–धीरे दक्षिण की ओर कछार में फैल जाता था। औश्र धुँए का एक पतला महीन बादल उसकी धरती के ऊपर तन जाता था। फिर उसके नीचे कछार के ताल और नाले में रहती हुई मेंढकी, ताल की चिड़ियाँ इस तरह धीरे–धीरे बोलने लगती थीं, जैसे अभी वे धुँए के बादल वहाँ बरसने लगेंगे।

आनन्द को रामनगर की यही शाम बेहद पसन्द थी। वह सुबह आठ बजे सोकर उठा और फिर पूरा दिन वह कमरे में लेटा ही रहा। पारो बुआ के बहुत कहने पर वह शाम के पाँच बजे हवेली से बाहर निकला और धीरे–धीरे टहलता हुआ सड़क पर गया। सड़क पर आते–जाते उसे बीसों आदमियों ने सलाम बजाया। क्योंकि आनन्द, कामता प्रसाद जी तहसीलदार का लड़का था, उसकी धाक वहाँ पर थी, विशेषकर सड़क के सारे दुकानदारों, खुँचावालों और तांगे–इक्का वालों पर।

यद्वपि आनन्द को वह अनपेक्षित गुरूता बिल्कुल नहीं पसन्द थी, इसलिए वह कभी–कभी उन सबसे अपनी राह काटता था, उनसे अपनी आँखें बचाता था, जो अत्यन्त अनावश्यक रूप से उसे अपनी लघुता–हीनता दिखाकर सलाम बजाते थे। इसका परिणाम यह भी हुआ था कि आनन्द काइस वर्ग से कोई सम्पर्क या जान पहिचान न थी। उस सड़क पर उसका परिचय केवल दो व्यक्तियों से था, एक विपती नाम की बुड़िया तमोलिन और खुदाबक्स नाम के इत्रफरोश से।

सड़क पर आकर आनन्द खुदाबक्श की छोटी–सी दुकान की ओर बढ़ने लगा। एकाएक पीछे से दो व्यक्तियों की पुकार आई। आनन्द ने घूमकर देखा। उनमें से एक मुंशी रामहरख लाल थे, काँजी हाउस के मुन्शी, और दूसरे थे पं0 गिरजादयाल जी, डाकखाने के मुन्शी। आनन्द ने उन्हें नमस्ते किया और वे दोनों पास आ गए।

रामहरख लाल, जिनके मूँह में बुरी तरह पान ठुसा था, गड़गड़ती हुई जुबान से उन्होनें कहा, ''कहिए–कहिए आनन्द बाबू! कब आना हुआ?'' आनन्द उनको उत्तर न दे पाया कि उसी बीच में गिरजादयाल जी बोलने के पहले इतनी जोर से हकलाए कि उनके मूँह में भरी हुई पान की पीक का एक कुल्ला उनके रेशमी कुर्ते पर आ पड़ा, और वे इस पर भी इतनी जोर से हँसे कि उनके मुँह के छीटे हवा में उड़ने लगे। उन्होंने कुर्ते को, अपनी धोती से पोछते हुए कहा–

''क..क....क कहिए आनन्द बाबू, क्या हालचाल हैं?''

''सब ठीक ही है!'' आनन्द ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

''य.....य..... यहाँ..... त.....तो बड़ी भारी ..... घ.....घटना हो गई,'' गिरजा दयाल ने पान की पीक को थूकते हुए कहा, ''आपकी सुभागी त.....त..... तो चली गई यहाँ से.....।''

आनन्द बिना कुछ बोले आगे बढ़ने लगा– खुदाबक्श की दुकान की ओर नहीं, बल्कि सीधी सड़क से दक्षिण की ओर।

''टहलने जा रहे आनन्द बाबू?'' रामहरख लाल ने पूछा।

''हाँ सोच तो रहा हूँ कि जरा टहल आऊँ,'' आनन्द ने नम्रता से कहा, ''लखनऊ से कल रात को यहाँ आया हूँ, घर पर पड़ा रहा, सोचा कि थोड़ा कछार की ओर टहल आऊँ।''

''अच.....च..... अच्छा किया ..... क.....क ..... क्यों नहीं, क्यों नहीं!''

गिरजादयाल जी कुछ और कहने के लिए गले में हवा भर ही रहे थे कि आनन्द ने उनसे जान छुड़ाते हुए हाथ जोड़ कर विदा ली, ''अच्छा पंडित जी फिर भेंट होगी।''

यह कहकर आनन्द आगे बढ़ गया। कुछ दूर बढ़, उसने मुड़कर पीछे देखा, रामहरख लाल अकेले उसकी ओर चले आ रहे थे और उसने यह भी देखा कि पं0 गिरजा दयाल जी सड़क पर आदमियों से घिरे हुए कुछ ऐसी बातें कर रहे थे, जो आनन्द से ही सम्बन्धित थीं, क्योंकि उनका दाँया हाथ संकेत के लिए उस समय आनन्द की ही ओर उठा था। लेकिन आनन्द फिर भी मुस्करा उठा और रामहरख लाल जब उसके पास आ गये तब वह एकाएक गम्भीर हो गया और चुपचाप आगे बढ़ने लगा। मुन्शी जी भी चुप थे, यद्यपि उनके ओंठ बार–बार कुछ कहने के लिए फड़फड़ा रहे थे।

आनन्द ने फिर शिष्टतावश उनसे पूछा, ''कहिए, और क्या हालचाल है?''

''सब ठीक है बाबू!'' मुन्शी जी को बोलने का अवसर मिला, ''लेकिन क्या संसार है, जमाना ही बदल गया।''

''क्यों?''

''आपने सुभागी के बारे में सुना ही होगा,'' मुन्शी जी ने पीक थूकते हुए कहा, ''जैसा, रामायण में कहा गया है, त्रिया चरित्र पुरूषस्य भाग्य... ठीक कहा है!'' इसके बाद मुन्शी जी च ..... च..... आहा ..... आहा करने लगे। आनन्द को उनपर हँसी आ रही थी, उनी मूर्खता पर कम, लेकिन उनके ज्ञान प्रदर्शन की गुरूता पर सबसे अधिक। लेकिन आनन्द अपने भावों को छिपाए हुए चुपचाप चलता जा रहा था।

मुन्शीजी आनन्द के प्रति अपनी संवेदना और करूणा प्रकट करते हुए कह रहे थे, ''सब बातें तो छिपा दी गई, कोई कानोंकान नहीं जाना, लेकिन इस दरम्यान में जो घटना घटी वह बहुत भयानक थी।''

''जैसे!'' आनन्द खड़ा हो गया।

मुन्शीजी आनन्द के बिल्कुल मुँह के पास आ गये और भेद भरे स्वर में उन्होंने अपनी आँखें चमकाते हुए कहा, ''खुद सुभागी ने अपने हाथों रामानन्द को जहर दे दिया।!''

''यह झूठ है'' जैसे आनन्द सहसा चीख उठा हो।

''बाबू! मैं इसके लिए गंगा उठा सकता हूँ, यह बात झूठ नहीं है,'' मुन्शीजी ने गंभीरता और आत्मविश्वास से कहा, ''क्या समझा था बाबू अपने उस गाँव की छोकड़ी को!''

आनन्द मूक–निश्चेष्ट मुन्शीजी को अपलक देखता हुआ खड़ा था। एकाएक कुछ ही क्षणों के बाद उसने बहुत तेजी से मुन्शीजी के सामने अपना हाथ जोड़ दिया, ''अच्छा, धन्यवाद..... अब मुझे आज्ञा दीजिए!''

यह कहकर आनन्द मुड़ा और बहुत तेजी से सड़क की दांई तरफ चल पड़ा। एक ही साँस में वह सड़क के किनारे के नाले को फाँद गया और बहुत तेजी से बढ़ता हुआ कछार में जाने लगा। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे, वह खुले मैदान में नहीं चल रहा था, वरन वह एक ऐसी तंग–अँधेरी गली में चल रहा था, जिसके दोनों सिरों पर जहरीला धुँआ सुलग रहा हो।

कछार में जड़हन की खेती अपनी पूरी जबानी पर थी। जड़हन का एक–एक पौधा उसकी एक–एक बाली, फूल में मदमस्त और आने वाले अन्न के रस से झुकी जा रही थी।

पूरे कछार की धरती, उसका तना हुआ सीना धानी रंग का हो गया था और उसपर हवा की फिसलती हुई लहरें इस तरह लग रही थीं, जैसे उस पर झुका हुआ आकाश गा रहा हो और पूरी फसल उसके संगीत से शरमा रही हो।

आनन्द कछार के एक सिर पर खड़ा हुआ अपनी एक दृष्टि में कछार के पूरे फैलाव को समेट रहा था। लेकिन उस खुले हुए मैदान में , उस अन्न की सुगंधि से भरी हुई धरती पर आनन्द को अब भी लग रहा था जैसे, उसका दम घुट रहा हो। वह चाहता था कि कछार की सारी ठंडी हवा, ताजी सुगंधि उसके स्नायुओं में प्राण वायु में घुल जाए और वह शांत हो जाए, जैसे कि जड़हन का एक–एक पौधा शांत था, पूरा कछार शांत था, उसके दोनों ताल शांत थे।

कछार के ऊपर वायुमंडल में रामनगर कस्बे का धुँआ बादल बनकर छा रहा था और आनन्द को लग रहा था, जैसे धुएँ का बोझ उसके सर पर आता जा रहा हो और वह निःसहाय धुएँ के उस बोझ को देख रहा हो। वह एक ऊँचे से मेड़ पर चलता हुआ ताल की ओर बढ़ रहा था। ताल के मेंढक धीरे–धीरे टुर्र–टुर्र.....कुर्र–कुर्र कर रहे थे। वह कुछ क्षणों में ताल के किनारे पहुँच गया और वहां खड़–खड़े वह धुएँ और जड़हन की जवान फसल से भरी हुई धरतर के ऊपर देखने लगा। ऊपर धुँआ, नीचे हरी फसल और दोंनों के बीच एक खुला हुआ हिस्सा, शान्त गंभीर। आनन्द उसी हिस्से को देख रहा था। शाम का अँधेरा बढ़ता जा रहा था। वह खुला हुआ भाग धुँधला होने लगा। शाम का अँधेरा बढ़ता जा रहा था। वह खुला हुआ भाग धुँधला होने लगा था, तब एकाएक आनन्द ने मानों देखा, उस खुले हुए भाग में एक धानी रंग की चुनरी उड़ रही थी और उसके परे कोई स्त्री धीरे–धीरे रो रही थी और मनुष्यों की एक अदृश्य भीड़ ठहाके लगा रही थी।

आनन्द वहाँ से वापस लौटने लगा। उसकी घुटन अब शान्त थी लेकिन उसके मन में कहीं से कुछ भरता जा रहा था, जिसमें पीड़ा कम थी, लेकिन उसमें बोझ बहुत कम था।

वह कछार को पार करता हुआ सड़क की ओर लौट रहा था।

सड़क के किनारे पहुँचकर उसने फिर एक बार घूमकर उस खुले हुए भाग के धुधँलके में देखा। मानों वहाँ की चूनरी फटकर तार–तार हो गई थी, और उसका एक–एक चीथड़ा धुएँ के बादल में खोता जा रहा था। मनुष्यों के कहकहे बन्द हो गए थे। आनन्द खड़ा हुआ अपलक–शून्य दृष्टि से उसी में तक रहा था और दूसरे ही क्षण उसे लगा, जैसे– धुएँ का बादल कछार से सीने पर, आनन्द के मस्तक पर धीरे–धीरे नन्हीं–नन्हीं बूंदों में बरस रहा हो– फूटी हुई सुहाग की चूड़ियाँ, फटी हुई चूनरी के एक–एक तार और कजरारे आँसू के रूप में।

आनन्द जब कस्बे की सड़क पर आया, तब चारों ओर, घर, सड़क और दुकानों में चिराग जल चुके थे। वह चुपचाप सीधे खुदाबक्स की दुकान पर गया। उसे देखकर खुदाबक्स इतना गद्‌गद हो गया कि उसके मुँह से कोई शब्द न निकल सका। उसने बहुत स्नेह और सम्मान से आनन्द को अपनी गद्दी पर बैठाया। बेहतरीन इत्र की दो कुरहिरी उसने तुरन्त भेंट की, और सम्मान भरे शब्दों में उसने बताया कि किस तरह रामनगर कस्बा अपने उसूलों से, जीवन बहुमूल्य आदर्शों से दूर हटता जा रहा था। उसी से यह पता चला कि रामनगर के तीन साहूकार मिलकर एक सिनेमाघर खोलने जा रहे थे। फिर उसने अपने व्यापार के विषय में भी बताया कि किस तरह तेल–इत्र के बाजार में मन्दी आ गई थी। कोई बिक्री–बट्टा नहीं। उसने बताया कि जब से जमीदारी का उन्मूलन हुआ, राजा, तालुकेदार, जमीदार बगैरह बेतरह परेशान थे। चारों ओर से उन लोगों ने अपने हाथ–पाँव बटोर लिए थे, फिर इत्र, खुशबूदार तेल को कौन पूछे!

आनन्द का मन खुदाबक्स के पास बैठने से बहुत हल्का हो चला था। उसी से साफ–साफ यह भी पता चला कि किस तरह कस्बे के एक वर्ग में सुभागी और तहसीलदार साहब को लेकर कनफुसकियाँ चल रहीं थीं और कैसे दूसरे वर्ग में सुभागी के नाम को खुलेआम जलील किया जा रहा था।

थोड़ी देर के बाद आनन्द खुदाबक्स से विदा लेकर सड़क से पूरब की ओर बढ़ने लगा। उसने दूर से ही देखा, अस्पताल के सहन में नीम की छाया तले एक पलंग बिछा था और उसके आसपास चार बेतरतीब कुर्सियां पड़ी थीं और उनपर भरपूर लोग बैठे थे। आनन्द ने अनुभव किया, उनमें कभी कोई ठहाका लगा रहा था, कभी–कभी समवेत स्वर से वहाँ हँसी फूट रही थी, उस शांति में भी कोई किसी के कान में कुछ कह रहा था, कोई फुस–फुसाहट में अपनी अभिव्यक्ति दे रहा था और कोई ओठों–ओठों, आंखों–आंखों वार्तालाप कर रहा था।

चुपचाप आनन्द अपने रास्ते चला जा रहा था, एकाएक नीम के तले से कई लोगों ने मिलकर आनन्द का स्वागत किया। लेकिन उनके निमंत्रण को पाकर आनन्द एक क्षण के लिए अपनी जगह पर खड़ा रहा, तब तक उसने देखा, अस्पताल के कम्पाउण्डर, स्कूल के मुन्शी, तहसील के बड़े बाबू वगैरह अपने–अपने स्थान को छोड़कर उसके स्वागत के लिए चल ही देने वाले थे। अतएव आनन्द को उधर मुड़ना पड़ा। उनके पास पहुँचते ही उसे ऐसा लगा जैसे कोई अमूर्त, हीन मानव वहाँ छिपकर बैठा हो जो अपनी मौन उपेक्षा से उसे पागल बना देना चाहता हों।

आनन्द को लोगों ने एक सिरे पर बैठाया और उसकी ओर उत्सुक होकर देखने लगें।

आनन्द उन लागों से क्या बात करे, और वे लोग आनन्द से क्या बात करें, किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था। आनन्द के सामने सभी अपने को एक अव्यक्त हीन–ग्रन्थि में बँधा पा रहे थे। आनन्द की अलस आँखें, उसका

थका–थका सा उदास चेहरा उन सभी बैठने वालों पर इस प्रकार अव्यक्त ढंग से अपना प्रभाव डाल रहा था, जैसे उसके व्यक्तित्व में सम्मोहन की कोई शक्ति हो।

''तहसीलदार साहब से आप मिले कि नहीं!'' अस्पताल के कंम्पाउण्डर ने पूछा, ''आपको उन्होंने क्या सलाह दी?''

आनन्द को ये दोनों बातें समझ में न आई, लेकिन वह इन दोनों प्रश्नों की पृष्ठ भूमि में खड़ी हुई समस्या को अवश्य समझ रहा था। उसने मुस्कराते हुए पूछा, ''आपका मतलब क्या है?''

''मतलब कुछ नहीं, कुछ नहीं ..... बस,'' कंपाउन्डर ने घबड़ाते हुए कहा, ''यही कुशलमंगल की बातें, घर–गृहस्थी की बातें।''

''लेकिन हमारी घर–गृहस्थी से आपको क्या चिन्ता? आप क्यों इतना परेशान है! व्यक्तिगत चीजें, व्यक्तिगत सत्य, व्यक्ति सापेक्ष हैं, समाज सापेक्ष ता नहीं।''

आनन्द की भाषा को कोई न समझ सका, नीम के तले फिर कुछ क्षणों तक शान्ति रहीं। ऊपर नीम की पत्तियों में हवा का मद्धम–मद्धम स्पर्श भी ऊपर से शांत बरस रहा था।

सहसा स्कूल के मुन्शी ने दिल थामकर कहा, ''लेकिन चाहे जो हो, सुभागी पर अत्याचार हुआ।'' यह कहते हुए उन्होंने डाक्टर की ओर देखकर अपनी दांयी आँख दबा दी।

''आनन्द बाबू पर क्या कम हुआ?'' यह कहकर बड़े बाबू ने अपना निचला होंठ धीरे से भींच दिया।

जब इन दोनों बातों को सुनता हुआ भी आनन्द चुप रहा, तब इसके आगे किसी को कुछ बोलने की हिम्मत न हुई। वे लोग– सबके सब, यही चाहते थे कि आनन्द अपने विषय में कुछ बातें करे, सुभागी के सम्बन्ध में वस्तुस्थिति जानने के लिए वह अपनी जिज्ञासा प्रकट करे, उनसे संवेदना की अपेक्षा करे और वह स्वयं कुछ ऐसी भी बातें, इसी बहाने बक जाए, जिसे लेकर वे हफ्तों उनसे आनन्द लूट सके। लेकिन आनन्द सब समझता था– एक–एक के भाव और उनके लक्ष्य। वह गांवों में भी रहा था औ शहर में रहता ही था, तथा कस्बे में आया ही था। इस तरह वह गाँव की आत्मा, उसकी संस्कृति एक ऐसी शकुन्तला है, जो ऋषिकन्या है, फिर भी शापित है, किसी की दुल्हन और प्रेमिका है, लेकिन उपेक्षिता है। फिर भी इसका पथ, जीवन है, मरू नहीं, इसमें विश्वास, तपस्या और श्रद्धा है, मृत्यु की पराजय और क्षुद्रता नहीं। ठीक इसके विरूद्ध, दूसरी सीमा पर शहर की आत्मा और संस्कृत है– एक ऐसी स्वतंत्र कुमारी की भाँति, जो अपने व्यक्तित्व में अपने को सम्पूर्ण समझती है, सब उसके हैं लेकिन कोई किसी का नहीं है। इसलिए उसमें विकास है, कहीं गतिरोध नहीं, सुख है, उपभोग है, लेकिन शान्ति नहीं है। इन दोंनों के बीच में है कस्बे की आत्मा, उसकी संस्कृति, यह चौके की राँड़ की तरह है– एक ऐसी जवान बिधवा की तरह, जो बिना गौने गए हुए एकाएक राँड़ हो रही हो। उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है क्योंकि उसका मूँह शहर की ओर पीठ गाँव की ओर।

आनन्द के मस्तिष्क में ये तीनों रूपक अत्यन्त स्पष्ट थे, इसलिए वह सब की चुपचाप सुनता जा रहा था और मौन उपेक्षा से भरता जा रहा था। थोड़ी देर के बाद वह वहाँ से उठा और सीधे हवेली की ओर बढ़ने लगा।

रात को खाना खाने के उपरान्त आनन्द, पारों बुआ और रत्ती तीनों खुले हुए आँगन में खड़े थे। नन्हा और गीता दोनों प्रभा के कमरे में सो गये थे। प्रभा, कामताप्रसाद के सर में तेल लगाती हुई उनके सिरहाने खड़ी थी और उस कमरे से, धीरे–धीरे बातें करती हुई प्रभा का स्वर अस्पष्ट रूप में आँगन तक आ रहा था। वे तीनों आँगन में खड़े–खड़े अपने–अपने ढंग की बातें कर रहे थे। पारो बुआ लखनऊ की बातें कर रहीं थी, मामा–मामी की बात, आनन्द की पढ़ाई की बात और उसकी छुट्टी की बात। रत्ती सुभागी की बात कर रहीं थी और आनन्द ''हाँ'', नहीं, अच्छा, ठीक'' आदि शब्दों से अपनी अभिव्यक्ति दे रहा था।

आँगन में पश्चिम की दीवार की छाया पड़ रही थी और आनन्द छाया के उस धूमिल अंधकार में कल की डोलती हुई उन दोनों छायाओं को ढूंढ रहा था, एक छाया जो लंगड़ाकर चल रही थी, कराह रही थी और दूसरी छाया उसे सहारा देती हुई धीरे–धीरे आगे बढ़ा रही थी।

सहसा कामता प्रसाद के कमरे में किसी चीज के फूटने की आवाज आई, जैसे– किसी ने तेल की भरी हुई शीशी या किसी और चीज की बोतल को आवेश में आकर फर्श पर पटक दिया हो। आँगन में वे तीनों चुप, हतप्रभ से हो गय। और दूसरे ही क्षण कमरे से कामता प्रसाद की आवाज उभरने लगी–

''मारे जूतों के साले का भेजा गंजा कर दूंगा। क्या समझ रखा है उसने! अब वह इसके बाद, एक भी कदम मुझसे खिलाफ होकर चलेगा तो मैं उसके पाँव तोड़ दूंगा। सुभगिया थी, डायन–जलील कहीं की। मैं अगर चाहता तो उस चुड़ैल को फाँसी पर लटकवा देता। हत्यारी कहीं की, जो अपने पति की नहीं हुई उसका मूँह देखना पाप है।''

आनन्द को स्पष्ट हो गया कि उस कमरे में क्या हुआ और क्यों किससे वे क्रोध भरी बातें की जा रही थीं, किसे सुनाकर की जा रही थी।

आनन्द निश्चित पगों से बड़ता हुआ आँगन से बरामदे में आया और कमरे के दरवाजे पर पहुँचकर उसने आवाज दी और पर्दा हटाकर वह कमरे प्रविष्ट हो गया।

क्षण भर के लिए कामता प्रसाद चौके, लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने उसी आवेश में पूछा–''तुम यहाँ कैसे आए?''

''आपने मुझे बुलाया, इसलिए!'' आनन्द ने शान्ति से उार दिया।

''मैं तुझे क्यों बलाता?''

''फिर सुभागी को लेकर गालियाँ सुनाई जा रही हैं?'' आनन्द के स्वर में तीव्रता उभर आई थी। वह पूछता जा रहा था, ''आप अपने जूतों से किस साले का भेजा गंजा कर रहे थे? आपके कमरे में तो केवल माता जी हैं, लेकिन इस समय आप जितनी गालियाँ दे रहे हैं, जितना क्रोध आवेश दिखा रहे हैं, उसके क्या अर्थ हैं?''

यह कहकर आनन्द प्रभा की ओर देखकर, कामता प्रसाद को देखने लगा। उनके ओठ काँप रहे थे, आँखों में आवेश टपक रहा था।

उन्होंने अपने को किंचित समय रखते हुए कहा, ''सुना है, तुम सुभगिया के लिए पागल हो रहे हो?''

आनन्द चुप था। अपलक उन्हें देखता जा रहा था।

''लेकिन क्या तुम्हें यह भी पता है कि वह कितनी जलील थी– चुड़ैल, बदमाश कहीं की। उसने अपने हाथों अपने पति रामानन्द को जहर दिया है! पता है?''

''आखिर क्यों?'' आनन्द ने अत्यन्त संयत भाव से पूछा।

''बेवकूफ! क्यों–क्यों की बात मत कर! कामता प्रसाद ने क्रोध में आते हुए कहा, ''मैं अगर चाहता तो सुभगिया को फाँसी पर लटकवा सकता था, लेकिन मैंने जाने दिया और सारे कस्बे का मुँह बन्द कर दिया!''

''क्यों?'' एकाएक आनन्द ने फिर पूछा।

कामता प्रसाद का दिल न जाने क्यों आनन्द के इस सूक्ष्म प्रश्न से घबड़ा रहा था और आनन्द की सूनी उदास, फिर भी क्रान्तिकारी दृष्टि से उनके रांगटे खड़े हो रहे थे और इसकी प्रतिक्रिया से उनकी आँखों में क्रोध बढ़ता जा रहा था।

''क्योंकि मुझे तुझ पर और उससे भी ज्यादा तेरी दिवंगता माँ पर दया आई!''

एकाएक बीच में ही आनन्द के मुँह से फिर बही प्रश्न निकल पड़ा, ''यह क्यों?''

''नालायक! इसलिए!'' यह कहते हुए कामता प्रसाद ने आनन्द के मुँह पर एक जोर का चाँटा मार दिया। प्रभा चीख पड़ी, और उस चीख को सुनकर पारो बुआ कमरे में दौड़ आई और उसने आनन्द को अपने अंक में सँभाल लिया, लेकिन आनन्द उसी तरह चुप निष्चेष्ट–स्थिर खड़ा रहा। काँपते हुए कामता प्रसाद अपने पंलग पर बैठ गए और हाँफने लगे।

बुआ ने आग्नेय दृष्टि से प्रभा को देखा, ''अब छाती ठंडी हो गई आपकी?'' फिर बुआ ने कामता प्रसाद को घृणा से देखा, ''शरम नहीं आती, इतने जबान बेटे पर हाथ उठाते हुए!''

सहसा आनन्द ने बुआ के जलते हुए मुँह पर अपना हाथ रख दिया, ''कुछ नहीं बुआ, कुछ नहीं!''

''निकल जाओ मेरे कमरे से सब लोग!'' कामता प्रसाद ने क्रोध में चीखते हुए कहा!

''आप होश में हैं कि नहीं?'' आनन्द ने दृढ़ता से पूछा!

''अभी कुछ बाकी है क्या?'' कामता प्रसाद ने कहा, ''अब जूतों से बात करूंगा!''

बुआ रो पड़ी। आनन्द उसे संभालने लगा, ''रोओ नहीं बुआ! आज मैं तैयार हूँ कि ये दिल खोलकर मुझसे जूते से ही बातें कर लें! क्योंकि बातें करने के लिए इनके पास जबान नहीं है, जूते हैं! जवान मनुष्य के पास होती है और जूते.....!''

बुआ रोती हुई आनन्द को कमरे से बाहर खींच रही थी। आनन्द बुआ को समझाता हुआ कामता प्रसाद को देख रहा था।

''आपके पास छोटी–सी ताकत है, झूठी–सी सामाजिक मर्यादा है, इसके बाद आपके पास क्या है, ढूँढ़िए आप अपने में!!''

''मेरे कमरे से निकलते हो कि नहीं!'' बीच में ही क्रोध से चीखते हुए कामता प्रसाद ने कहा और पलंग से वे फिर उठ खड़े हुए।

''मैं इस कमरे से थोड़ा रूककर जाऊँगा,'' आनन्द ने कहा, ''क्योंकि इस कमरे की दीवारें, मेरे और आपके बीच, आपके और सुभागी के बीच बहुत सी बातें जानती हैं! मौत, अन्धकार और जीवन की साक्षी हैं ये दीवारें। मैं इन्हें और भी कुछ बातों का साक्षी बनाना चाहता हूँ, इसलिए मैं अपने दुराग्रह से यहाँ कुछ क्षण और रूकूंगा, क्योंकि मैं फिर इस कमरे में वापस नहीं आऊँगा। और तब यह सूना कमरा, इसकी नंगी दीवारें एक दिन आपको पागल बना देंगी। आपके पाप, आपकी दूषित अन्तरात्मा आपके झूठे स्वच्छ–निर्मल बाह्य व्यक्तित्व पर खून के धब्बे डालेगी और तब अपने सारे सुख, उपभोग, और अपनी सारी सामजिक मर्यादों के बाबजूद आप अकेले इन्हीं नंगी दीवारों से अपना सर टकरायेंगे!''

चलो! चलो!!.... कल के लौंडे, निकल जा मेरे कमरे से!'' कामता प्रसाद ने तीखी उपेचा से कहा, ''मुझे नहीं मालूम था कि उस चुड़ैल में इतनी ताकत थी कि वह तुझे आज भी पागल बनाए हुए है, नहीं तो मैं उस दिन ही उसकी कहानी समाप्त कर देता।''

''आप नहीं कर सके, ऐसा कहिए,'' आनन्द ने कहा, ''क्योंकि सुभागी अपने में एक शक्ति थी, और किसी शक्ति को मनुष्य नहीं नष्ट कर सकता।''

''तो क्या लखनऊ से इस बार तू मेरी नाक काटने आया है?''

''यह काम तो आपने रामनगर कस्बे पर छोड़ रक्खा था'' आनन्द ने गम्भीरता से उत्तर दिया, ''और उसने इस काम को अब तक पूरा कर दिया है!''

''क्या कहा!'' कामता प्रसाद क्रोध से एकाएक फिर काँपने लगे।

''जो सत्य है''।

यह कहकर आनन्द चुपचाप बुआ को साथ लिए हुए कमरे से बाहर निकल आया। रत्ती बाहर बरामदे में बैठी रो रही थी। रात आधी बीत चुकी थी और आँगन का अन्धकार बेहद घना हो चला था। घने अन्धकार में आनन्द ढूँढ़ रहा था। उसका न आना स्वाभाविक था लेकिन दूसरी छाया?

आनन्द को बिस्तरे पर पड़े–पड़े जब अधिक देर हो गई और उसकी मन स्थिति में जब एक भयानक घुटन और उसकी शिराओं में एक अजीब तरह का तनाव पैदा होने लगा, घूमते, डोलते–डोलते जब वह थक गया, तब रूककर ऊपर आकाश की ओर देखने लगा। वह चाहता था कि किसी तरह कम से कम उसकी आँखें के जलते हुए कोयले बुझ जायें। उसी समय उसे लगा, जैसे आँगन की उत्तरी दीवार के परे कोई बहुत धीरे–धीरे कराह रहा हो और बीच–बीच में किसी के रोने की सिसकियाँ भी उभर रहीं हों।

वह आँगन की खिड़की खोलकर बाहर आया, उत्तरी दीवार के पास गया। वहाँ कोई न था, लेकिन उसे अब, लेकिन उसे अब भी वह कराह, वह मौन रूदन जैसे सुनाई पड़ रहा था। अन्धकार नहीं रोता, क्षितिज नहीं कराहता, शून्य नहीं सिसकता, लेकिन इंसान का अंतःक्षितिज अवश्य रोता है, और यह रूदन तब बहुत भयानक होता है, क्योंकि तब यह रूदन, यह मौन करूणा, प्रकृति के सीने पर जम जाती है, और स्वयं सवाक् होकर अपने सूक्ष्म अस्तित्व से उसे भेदने लगती है।

आनन्द बहुत दूर तक फैले हुए अन्धकार में देख रहा था। अंधकार में भी रूपहली किरनें होती हैं, उनका एक रूप होता है। उसको अनुभव हुआ, वह मौन रूदन–कराह उसी रूपहले अंश से उभर रहा है। उसने देखा, पहिचाना, अपने पग को निश्चित किया और वह उसी के पीछे अंधकार में बढ़ गया, बढ़ता गया।

अंतराल

पुरैना बाँसी से मिला ही हुआ समझा जाता था, वैसे बाँसी कस्बे से उस गाँव का फासलर केवल डेढ़ मील का था। उस गाँव में मुख्यतः ब्राह्मणों की आबादी थी, और वह भी गर्ग वंश के शुक्लों की। उनकी वंशावली, इतिहास, और उनकी संस्कृति परैना गाँव की थाती थी। उनके अतिरिक्त वहाँ कुरमी, भर, पासी–चमारों की बस्ती के साथ नाई, धोबी, कहार–कुम्हार आदि पाँचों पौनी के भी घर थे।

वहाँ के ब्राह्मणों का सामाजिक प्रभुत्व परैना गाँव पर ही नहीं, बल्कि उनकी धाक पास के तमाम छोटे–छोटे गाँवों, पुरवों, पट्टियों और यहां तक कि बाँसी कस्बे पर भी थी। परैना के ब्राह्मण, यद्यपि दो प्रतिशत भी शिक्षित नहीं थे, लेकिन अपने कुल परिवार की पुरानी परम्परा दिखावे के सामाजिक आदर्शों के प्रकाश में वे उस क्षेत्र के पूज्य थे। पूरे गाँव के घर–घर का ब्राह्मण पास–दूर किसी न किसी गाँव का पुरोहित था।

और स्वयं समूचा पुरैना गांव!

अपने को सर्वत्र सामाजिक नियन्ता की स्पृहा उन्हें इतनी रूढ़ियों में जकड़े बैठी थी कि उन्हें खुलकर सांस लेना दुष्कर था!

सुभागी की माँ जमुना, इसी पुरैना गाँव की विधवा–ब्राह्मणी थी। उसका घर गाँव के बीच था, लेकिन जमुना जैसी विधवा ब्राह्मणी का गांव के बीच में रहना कितना अपशकुन पूर्ण और गाँव की मर्यादा के विरूद्ध था!

सुभागी वर्ष भर की न हो पायी थी कि गांव के ब्राह्मणों ने जमुना को उसके घर से निकालकर गाँव के एक सिरे पर, दूसरे घर में बसा दिया और जमुना को विवश होकर वहां रहना पड़ा।

जमुना रोयी बहुत, इतना रोई कि गाँव के लोग तंग आ गए, लेकिन फिर वह चुप हो गयी। रोने के लिए भी तो शक्ति चाहिए! जमुना में वह शक्ति न रह गई। गांव भर की उपेक्षा, प्रतारणा के बीच वह मरी नहीं, क्योंकि उसकी गोद में सुभागी थी और सुभागी का दूध उसके आँचल में था, जिसे पूरा उसे पिलाना था। अनबोलते– दुधमूँहों के प्रति विश्वासघात करना वह बहुत बड़ा पाप समझती थी। इस सत्य को उसने अपनी माँ के मूँह से बार–बार सुन रक्खा था। उसी स्थिति में जमुना दो वर्ष तक वहाँ रही।

एक रात जब जमुना अपने पुराने घर से गाँव के सिरे पर, अपने नये घर आ रही थी, माधोंबाबा की गली में सुमेसर ने उसकी बाँह पकड़ ली। जमुना उग्र हो गई और सुमेसर को उसने इतना पीटा कि वह कहीं मुँह दिखाने लायक न रह गया। लेकिन उस गली में प्रतिशोध की ज्वाला में जलता हुआ सुमेसर जमुना के भविष्य में इतना भंयकर डर बन गया कि जमुना को उसी रात पुरैना छोड़ देना पड़ा।

उस समय सुभागी ढाई वर्ष की हो चुकी थी। जमुना उसे अपने अंक में लिए हुए पुरैना से बाँसी आयी। बाँसी कस्बे में वह दो दिन भूखी रही। दिन भर कहीं काम ढूँढती और रात को किसी के सूने बरामदे, दरवाजे पर सो जाती।

प्रातः काल था। जमुना नन्हीं सुभागी को उँगली के सहारे पकड़े हुए धीरे–धीरे कस्बे में दक्षिण की ओर बढ़ रही थी। उसमय जमुना अपने आप में रो रही थी। बहतु हुए आंसुओं से उसका सूना आंचल भींगता जा रहा था। सुभागी बार–बार अपनी रोती हुई मां को देख रही थी और उसके नन्हें फूल से पाँव धूल में बढ़ते जा रहे थे।

एकाएक जमुना की दृष्टि सामने छायादार पीपल के वृक्ष के तले जा पड़ी। जमुना ने देखा, पीपल के तजे कोई साध्वी स्त्री बैठी हुई किसी देवता का पूजन कर रही थी। वह खड़ी हो गयी और निश्चेष्ट रोती हुई उसे अपलक देखने लगी।

पूजन समाप्त करके उस स्त्री ने जमुना को देखा और अनायास संवेदना से अभिभूत, उसके पास चली आयी। अब जमुना के आँसुओं का बाँध एकाएक टूट गया। और उसके टूटने में करूणा का इतना आवेग आ गया कि सामने खड़ी हुई स्त्री उसमें बह गई। वह स्वयं रोयी और जमुना के आँसुओं में डूब गई।

जमुना ने बताया कि वह विधवा ब्राह्मणी है। कहीं शरण चाहती है। वह चौका–बर्तन भी कर सकती है, उम्दा खाना बना सकती है और किसी के भी बच्चों को सम्हाल सकती है। इसके बदले में उसे बस, इतनी ही की अपेक्षा है– खाना, तन ढकने को कपड़ा, और अपनी थोड़ी–सी मर्यादा की रक्षा, बस।

जमुना को स्त्री ने अपने सँग लिया और वह सामने बढ़ने लगी। रास्तें में अपना परिचय देते हुए बताया कि उसका नाम सत्यवती है। वहाँ के तहसीलदार की वह पत्नी है, जमुना की भाँति उसकी भी गोद में तीन वर्ष का एक पुत्र है।

पथ में जमुना सत्यवती से सहर्ष स्वीकार करती चल रही थी कि वह खाना भी बनायेगी, सेवा भी करेगी और बच्चे को भी सम्हालेगी।

जमुना एक बार फिर से जी गयी। उसे पुनः ईश्वर पर विश्वास हो गया। उसका जो कुछ टूटा था, उसने अपने से समझौता कर लिया कि सब कुछ जुड़ गया। सत्यवती के विशाल–हृदय में उसे व सब वस्तुएँ मिल गई, जिनमें जिया जा सकता था। जमुना छाया की भाँति सत्यवती के साथ रहती। जमुना उन्हें वंती जीजी कहने लगी और उसे स्वयं पंडित की संज्ञा मिली। ढाई वर्ष की सुभागी को तीन वर्ष का आनन्द सुग्गी कहकर पुकारता, उसे पीटता और स्वयं भी

पिट जाता। सुभागी उसे नन्नू कहती और जब तक दोनों सो नहीं जाते वे हमेशा एक दूसरे के साथ रहते–खुलते और ऊधम मचाते।

बंती जीजी की छाया में रहते–रहते जमुना को छः महीने बीत गए होंगे। गर्मी की एक दोपहरी में बंती जीजी अपने कमरे में रामायण पढ़ रही थीं और जमुना पास बैठी, मंत्रमुग्ध होकर सुन रही थी। भीतर बरामदे में सुग्गी और नन्नू लकड़ी के एक घोड़े को लेकर खेल रहे थे।

दोनों की बीच में लकड़ी का घोड़ा था। नन्नू के हाथ में छोटा सा चाबुक था। सुग्गी के हाथ में उसकी नयी गुड़िाया थी, जो अभी कुँआरी थी। नन्नू कह रहा था कि सुग्गी अपनी गुड़िया को उसके घोड़े पर बिठा दे और वह बहादुर घोड़ा, गुड़िया को अपनी सीट पर बिठाए हुए उसके लिए दूल्हा ढूँढ़ निकालेगा। सुग्गी इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से दूर भाग रही थी। वह नन्नू से हठ कर रही थी कि उसकी गुड़िया क्यों अपनी ओर से अपना दूल्हा ढँढ़ने जाये? क्यों नहीं उसके लिए उसका दूल्हा घर ही आये! यह कहकर, वह अपनी गुड़िया के रूप–श्रंगार की प्रशंसा में लग जाती। जब नन्नू बिगड़ जाता कि क्या उसका घोड़ा अच्छा नहीं है। वह भी तो बुहत सुन्दर है। कितना बहादुर लगता है! तना हुआ सीना, खड़े कान, बड़ी–बड़ी आँखें। फिर उसने सुग्गी से प्रस्ताव किया कि क्यों नहीं वह अपनी गुड़िया की शादी उसके घोड़े से कर देती? घोड़ा तो गुड़िया के घर ब्याह करने आया है।

इस प्रस्ताव पर एकाएक सुग्गी रोने लगी और उसने गुड़िया को अपने अंक में छिपाते हुए नन्नू के घोड़े को हाथ से मारकर जमीन पर गिरा दिया। फिर नन्नू के बहुत धक्का लगा। उसने गुस्से में आकर तत्काल चाबुक की पूरी चोट सुग्गी के माथे से अंक तक छीलती चली आयी और वह चीख उठी।

नन्नू भागा हुआ माताजी के कमरे में घुस गया और बिना कुछ बोले–चाले वह पंडित की गोद में अपना सिर छिपाकर घबड़ाया हुआ लम्बी–लम्बी साँसे लने लगा। बरामदे में सुग्गी चीख रही थी। बंती जीजी को स्पष्ट हो गया कि घटना हुई होगी। दौड़ी हुई वे बरामदे में गयीं, सुग्गी को गोद में उठा लिया और कमरे में वापस लौड आयी। नन्नू अब तक पंडित की गोद में अपना सर गड़ाये, चुपचाप पड़ा था।

बंती जीजी ने सुग्गी को अपने पलंग पर बिछा दिया और स्वयं बढ़ कर पंडित की गोद में से नन्नू का सिर ऊपर उठाकर वे जैसे, डांटती कुछ पूछने को हुई, पंतिउ ने नन्नू को अपनी बाहों में छिपाते हुए कहा, कि नन्नू ने सुग्गी को नहीं मारा है। सुग्गी ने बदमाशी की होगी तब मेरे बेटे ने थोड़ा डाँट दिया होगा, बस! यह तो ऐसे ही रोती है।

सुग्गी अब तक चोट के दर्द से सिसक रही थी। उसके माथे पर चाबुक का प्रहार स्पष्ट होकर सूज आया था। बंती जीजी ने जब सुग्गी के माथे पर उस चोट को देखा तब वे नन्नू पर गुस्से से लाल हो गयी, लेकिन उस समय तक पंडित नन्नू को अपनी गोद में छिपाये बाहर आ चुकी थी।

बंती जीजी की आँखें संवेदना से डबडबा आयीं। चोट पर औषधि लगाकर वे सुग्गी को चुप कराने लगीं।

पायताने सोई हुई सुग्गी ने थोड़ी देर के बाद रोना बन्द कर दिया था, लेकिन थोड़ी–थोड़ी देर पर उसे एक ऐसी लम्बी सिसकी आती थी जिसे वह सांसों के साथ भरती हुई सर से पांव तक कंप जाती थी। उसकी आँखें मुदी थीं और बंती जीजी धीरे–धीरे उसे पंखा झल रही थीं। थोड़ी देर के बाद सुग्गी सो गयी लेकिन उसके भीतर से उठती हुई सिसकियाँ अब तक कभी–कभी उसकी साँसों के साथ उभर आती थीं और सुग्गी उस क्षण कँप जाती थी।

जब सुग्गी बेखबर सो गयी तो फिर जमुना मुस्कराती हुई नन्नू को गोद में लिए हुए कमरे में आयी। उसने देखा, बंती जीजी का मुँह उदास था। पंडित चुपचाप आकर पास खड़ी हो गयी।

''पंडित, तूने बदमाश नन्नू को मारा नहीं!'' बंती जीजी ने क्रोध पीते हुए कहा, ''देखती नहीं, इसके माथे पर कितनी चोट लग गई है!'' पंडित स्नेह से मुस्करा पड़ी। उसने बंती जीजी को मनाते हुए कहा, ''छोड़िए भी जीजी! अब सुग्गी सो गयी, अब किस बात की चिन्ता?''

''नन्नू ने मेरी सुग्गी को क्यों इस तरह मारा?''

जमुना अब खिलखिला कर हँस दी। उसने जीजी को वह सारा किस्सा सुनाया, जिसे नन्नू ने अभी उसे साफ–साफ बताया था, कि किस तरह सुग्गी अपनी गुड़िया के विवाह ढूँढ़ने के चिन्ता में पड़ी थी। नन्नू ने प्रस्ताव किया कि सुग्गी अपनी गुड़िया की शादी उसके काठ के घोड़े से कर दे। सुग्गी इस प्रस्ताव पर बहुत बिगड़ी और उसने गुस्से से नन्नू बेटा के घोड़े को जमीन पर गिरा दिया, इस पर नन्नू बेटा ने सुग्गी को मारा! फिर क्या बेजा किया?

''क्या बेजा किया?'' बंती जीजी ने नन्नू को गुस्से से घूरते हुए देखा, ''बड़े जाट साहब बन कर आए हैं, जो इनके घोड़ का ब्याह अपनी गुड़िया से न रचाये उसे पीट देंगे?''

इस पर सहसा नन्नू फफक कर रो पड़ा और पंडित उसे सम्हालती हुई कमरे से बाहर चली गई।

दो घंटे के बाद, दिन ढल गया। सुग्गी जब सो कर उठी वह नन्नू को ढूंढने लगी, जैसे, उसे वह सब कुछ भूल गया था। जब सुग्गी नन्नू से मिली तब सुग्गी को तो सब कुछ भूल गया था, लेकिन नन्नू को सब कुछ याद था। सुग्गी उस खेल की बातें कर रही थी, लेकिन नन्नू चुप था और वह बार–बार उसके माथे की चोट देख रहा था।

नन्नू उसे अपने कमरे में ले गया। उसने उसे वह तस्वीरों वाली किताब दे दी, जिसे अभी कल तक सुग्गी से चुराता फिरता था। उसमें उसे वह जगह भी बता दी, जहां वह अपनी गेंद छिपाकर रखता था।

दुसरे दिन, जब वे फिर खेलने लगे, उस समय उन दोनों के बीच केवल कागज की एक डोली थी। उन दोनों ने एक ही क्षण में यह तय किया कि गुड़िया की शादी उस गुड्डे से क्यों न कर दी जाये, जो बारा– कुँआ के मेले से खरीद कर आया था, यद्यपि उससे खेलते–खेलते उन दोनों ने उसके दोनों हाथ तोड़ रखे थे।

गुड्डी–गुड्डा लाए गये उन दोनों ने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें डोली पर बिठाया और दोनों ने अपनी–अपनी उँगलियों के सहारे डोली उठायी।

डोली लिए हुए, बरामदे से आँगन में उतरती हुई सुग्गी हँसती हुई अपनी तोतली वाणी में गाने लगी– '' डोली ढोओ ले कँहलया।'' नन्नू ने भी हँसते हुए उस गीत में अपना सहयोग दिया और दोनों की मिली हुई तोतली वाणी से उनके गीत की गति आगे बढ़ गई–

डोली ढोओ ले कँहलवा,
नेकी मलबै तुहाल ।

आँगन भर में घूमती हुई उनकी ढोली अंत में उनके छोटे से मिट्टी के घर पर उतरी, जिसका नाम उन्होंने ''घर–घरौंदा'' या ''घल–घलौंदा'' रख छोड़ा था।

डोली घर–घरौंदे में झाँक–झाँक कर बेहतर हँसते जा रहे थे और बरामदे में खड़ी–खड़ी जमुना और बंती जीजी मुस्करा रहीं थीं।

इस तरह बांसी और सुग्गी और नन्नू को एक साथ खेलते हुए पाँच वर्ष बीत गए। अब सुग्गी पूरे सात वर्ष की हुई और नन्नू आठ वर्ष का हुआ। इस बीच में उन दोनों ने कितनी लड़ाइयाँ की, कितना रोए–हँसे, रूठे, मने, कितने ब्याह रचाए, कितने घर–घरौंदे फोड़े और कितनी खुशियाँ एक को दूसरे से किली, यह सब उनकी आँखों में झाँक रहा था।

आनन्द अंग्रेजी की पाँचवीं कक्षा में पढ़ने लगा। सुभागी को बंती जीजी घर ही पर स्वयं पढ़ाती थीं, औरउसे जब तक हिन्दी पढ़ना और लिखनाप दोनों आ गया था। आनन्द सुभागी को आज्ञा देता और सुभागी उसकी आज्ञा का पालन करने में फूली न समाती।

दस बजे आनन्द जब स्कूल जाने लगता, तब सुभागी किताब–कॉपियों से भरे हुए चमड़े के बैग को उसके कंधे पर लटका देती। और जमुना नास्ते से भरे हुए छोटे कटोरदान को रूमाल में बाँधकर उसके दाएँ हाथ में पकड़ा देती। आनन्द ताँगे पर बैठकर स्कूल जाने लगता और सुभागी बँगले के बरामदे में खड़ी–खड़ी उसे तब तक देखती रहती जब तक आनन्द का ताँगा उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हो जाता।

दिन में वह बंती जीजी की सेवा करती। उन्हें पूजा कराने का सारा दायित्व उसने अपने ऊपर ले रखा था। बंती जीजी उससे रामायण पड़वाती, और स्वयं वे उसका अर्थ बताती।

एक बार बंजी जीजी अशोक वाटिका के प्रसंग को लिए हुए उसका अर्थ सुभागी को समझा रही थीं। ''जानकी जी अपने परित राम के वियोग में कितनी दुखी और विह्वल हैं।'' इस पर सुभागी ने सहसा पूछा, ''सीता जी ने राम के पास चिट्ठी क्यों नहीं भेज दी, या तार मार देती।''

बंती जीजी के बहुत समझाने पर भी उसे स्थिति स्पष्ट न हुई।

लेकिन उसी वर्ष, पूस उतरते–उतरते तहसीलदार कामता प्रसाद का बाँसी से तबादला हो गया। जिले से बाहर उन्हें गोंडा जाने की सरकारी आज्ञा मिली।

जमुना ने बंजी जीजी से संकल्प कर लिया था कि वह जीवन–पर्यन्त उन्हीं के चरणों में बैठकर अपने दिन प्रसन्नता–शान्ति से व्यतीत करेगी। सुभागी को तो कभी यह पता ळगी न था कि बंती जीजी उसकी नहीं है, उसे इसका भी ज्ञान न था कि आनन्द और वह दो हैं। उसने कभी सोचा तक भी न होगा कि तहसीलदार साहब सरकार के व्यक्ति हैं, वे सदा बाँसी छोड़कर कहीं जायेंगे तो उसे साथ न ले जायेंगे।

जमुना बंती जीजी की छाया छोड़ने के लिए किसी भी मूल्य पर तैयार न थी। वह तो यहाँ तक कहती थी कि सुभागी को लिए हुए बाँसी से गोंडा तक पैदल चली जायेगी। बंती जीजी दिल से चाहती थीं कि वे अपने साथ जमुना

और सुभागी को गोंडा ले चलें। लेकिन तहसीलदार साहब इससे पूर्ण सहमत न थे। उनका कहना था कि पहजे केवल वे ही लोग गोंडा चलें, नयी–नयी जगह है, वहां जब सब ठीक–ठाक हो जाये तो शीघ्र ही वे जमुना और सुभागी को अपने पास बुला लेंगे।

सुभागी को लिए हुए जमुना बाँसी से पुरैना की ओर वापस जा रही थी, और वह अपने मन–ही–मन रोती जा रही थी। यद्यपि उसे पूर्ण विश्वास था कि बंती जीजी, तहसीलदार साहब एक ही हफ्ते में उसे गोंडा अपने पास निश्चित रूप से बुला लेंगे।

लेकिन बाँसी से पुरैना की राह पर उसे न जाने क्यों ऐसा लग रहा था कि जैसे, वह फिर अकेली हो गयी, कोई बहुत सुन्दर भावना, माँ के हृदय की तरह महान कोई घनीभूत छाया, जिसके तले वह फिर से जी कर खड़ी थी, वह सब कहीं दूर हटता जा रहा था।

संध्या–बेला थी। जमुना उदास, चिन्तित–मौन, पुरैना के पथ पर बढ़ रही थी। रास्ता उसे साँप की तरह डँस रहा था। उसने इसकी कल्पना छोड़ड रखी थी कि उसे कभी पुरैना के उस रास्ते से वापस लौटना पड़ेगा, जिस रास्ते से वह रोती हुई, रात के अँधेरे में भाग कर बाँसी आयी थी।

तब, उस बार सुभागी माँ की गोद में चलकर पुरैना से बाँसी आयी थी। अब, इस बार वह माँ के पीछे–पीछे धरती पर चलती जा रही थी। वह माँ से बार–बार पूछ रही थी–कि वे कहाँ जा रहे हैं? और हम कहाँ जा रहे हैं? बंती जीजी के पास अब लौट चलो माँ! आनन्द बाबू कह रहे थे कि हम रेलगाड़ी पर चढ़ेंगे, तुम नहीं चढ़ने पाओगी, चलो माँ, हम लोग भी दौड़कर रेलगाड़ी पर चढ़ जायें।

जमुना चुपचाप रास्ते पर चली जा रही थी। उसकी आँखों में समुचा पुरैना गाँव, उसकी समूची संस्कृति की तस्वीर चल रही थी। उसकी आँखों में वे सब लोग चल रहे थे, जिन्होंने उसे एक–एक करके पत्थर मारा था। सुभागी पूछती जा रही थी, माँ तू बोलती क्यों नहीं? बंती जीजी ने मुझे यह रूपया क्यों दिया है? क्या होगा यह?..... तू बंती जीजी के गले से लगकर रो क्यों रही थी?.... बोलती क्यों नहीं? जाओ हम भी नहीं बोलेंगे!'

यह कहते–कहते सुभागी रूठ कर वहीं रास्ते पर बैठ गयी। वह हठ करने लगी और बात–ही–बात में रोने लगी। जमुना ने उसे मनाया नहीं, कुछ कहा नहीं, बल्कि वह भी खुलकर रो पड़ी।

अंधकार घना होता जा रहा था। जमुना सुभागी की ऊँगली पकड़े हुए गांव के समीप पहुँच रही थी। उसे संतोष था कि रात का घना अंधकार है और वह उसी अंधकार में पुरैना गाँव में प्रवेश करेगी। उसे कोई देखेगा नहीं, न उससे कोई बातें करेगा। जमुना सोच रही थी कि वह पूरब वाले आम के पीछे से गाँव के उत्तर पहुँच जायेगी। धीरे से घर का ताला खोलेगी और घर में छिप जायेगी।

दूसरे दिन थोड़ा–सा दिन चढ़ते–चढ़ते, पुरैना गाँव में यह बात फैल गयी कि जमुना खूब कमा कर कस्बे से गाँव लौटी है। कितनी मोटी हो गयी है, रंग देखो, कितना निखर आया है। तहसीलदार साहब के यहाँ से खूब पैसा भी गाँठे होगी। और उसकी छोकड़िया को तो जरा देखे, कितनी सयानी हो गयी! टपे–टप् बातें करती है!

सुबह उठते ही जमुना घर की सफज़ाई में जुट गयी। कई जगह घर गिर रहा था, कई जगह दीवारें कट गयी थीं। चारों ओर धूल, मकड़ी के जाले और गई–गुबार से घर पटा हुआ। अबाबीलों ने जगह–जगह मिट्टी के घोंसले से तो नाक में दम था।

जमुना ने किसी के भी घोंसले पर हाथ न लगाया। यह फाँड़ बाँध, कमर कस कर पूरे घर को साफ करने लगी। सुभागी पूछती, ''हम तो गोंडा जायेंगे! फिर इस घर की इतनी सफज़ाई क्यों कर रही हो?''

जमुना उदासी से उत्तर देती–''बेटी यह अपना घर है! कितने दिनों पर हम लोग अपने घर में आए हैं। इसे ठीक–ठाक कर दें न! नहीं तो गिर जायेगा!''

''इस घर को ठीक करके हम लोग बंती जीजी के यहाँ चलेंगे न?'' सुभागी माँ के काम में तेजी से हाथ बँटाती हुई पूछ रही थी, ''क्या बंती जीजी हमारे इस घर में नहीं आयेंगी?''

जमुना चुप थी और सुभागी प्रश्न कर रही थी, ''तो माँ हम लोग गोंडा जायेंगे और कुछ दिन के बाद हम फिर इसी घर में वापस आ जायेंगे न?''

जमुना के पास इन प्रश्नों के कोई उत्तर न थे। वह चुपचाप घर के बंदोबस्त में लगी थी। क्षण भर का अवकाश न वह अपने मन को दे रही थी, न अपने शरीर की।

गाँव की औरतें एक–एक, दो–दो, चार–चार जमुना से मिलने आ रही थीं, उसे देखने आ रही थीं, लेकिन जमुना ने अपने को, अपनी सम्पूर्णता को इस तरह घर के बन्दोबस्त में लगा दिया कि भेंट–अकवार, राम–जुहारी, पाँव–पैलगी के अतिरिक्त उसे इतनी फुर्सत ही नहीं थी कि वह लोगों से अपनी की, उनकी सुने, स्वयं रोए और उन्हें रूलाए।

फिर भी जमुना का व्यक्तित्व गाँव की दुपहरी में सबकी वाणी, उसके दृष्टि बिन्दु का उपजीव्य बन चुका था। सब स्तर, सब दिशाओं में वह आलोच्य–विषय बनकर गाँव की दुपहरी में फैली हुई थी। क्यों कि अब जमुना के व्यक्तित्व में एक संधि–बिन्दु पर सब कुछ उपलब्ध था– वह विधवा थी, वह जवान तो नहीं, फिर भी अब तक आकर्षण थी, वह ब्राह्मणी थी, और पिछले पांच वर्ष तक उसने तहसीलदार कामता प्रसाद, जो जाति के क्षत्री थे, उनके यहाँ खाना बनाने की नौकरी की थी।

वह माँ भी थी। सुभागी जैसी सात–आठ साल की कुमारी लड़की उसके सामने थी। और सबसे बड़ी बात, वह कैसे अपने आप, गाँव छोड़ कर चली गयी थी, और कैसे अब कस्बे से गाँव लौटी है!

जमुना सबकी सुनती थी, पर कुछ बोलती न थी। उसे अपने सत्य पर अधिक भरोसा था और उससे भी अधिक उसे बंती जीजी पर विश्वास था। बंती जीजी को वह अपने मन–ही–मन में माँ मानती थी और कभी–कभी वह अपने आप में बंजी जीजी को साद कर माँ कहकर पुकार भी उठती थी।

इसलिए जमुना कमर कसे, निश्चिन्त, स्वस्थ मन से अपने घर में काम करती हुई बंती जीजी के पत्र की अनन्त प्रतीक्षा कर रही थी।

सात दिन बीत चुके, बंती जीजी का पत्र न आया। नित्य डाकिये का रास्ता देखते–देखते उसकी आँखें पकने लगी, लेकिन फिर भी वह निराश न थी। उसने एक जबाबी कार्ड बंती जीजी के पास भेजा और निश्चिन्त हो गई कि चार ही दिनों में उसके पास जीजी का पत्र आ जायेगा।

जमुना दिन–रात स्वप्न देखती थी कि बंती जीजी उसे गोंडा बुलायेंगी। वह पुरैना को फिर छोड़ कर उनके पास चली जायेगी और उसका शेष जीवन उनके चरणों में बैठकर कट जायेगा।

लेकिन पन्द्रह दिन बीत गए, गोंडा से कोई खत न आया। जमुना मन–ही–मन पागल होने लगी और उसने फौरन पदारथ काका के हाथों बंती जीजी के पास जबाबी तार दिया। तार तो आयेगा ही उसक कौन रोक लेगा!

और गोंडा से तार आया। बंती जीजी का दिया हुआ नहीं, बल्कि बंती जीजी के विषय में दिया हुआ तार मिला कि ''परसों बंती जीजी का स्वर्गवास हो गया।''

तार पढ़ते ही जमुना कटे वृक्ष की भाँति किर पड़ी। वह रोयी नहीं सर–छाती पीटने की शक्ति उसमें न रही। उसे एकाएक ऐसा लगा, जैसे किसी ने एक ऊँचे टीले के शिखर से बहुत जोर का धक्का देकर उसे नीचे गिरा दिया हो, बहुत नीचे, ऐसी सख्त कंकरीली जमीन पर जो युगों से बाँझ है– जिस पर घास का एक तिनका नहीं उगता, जहां कोई जीव जंतु नहीं– चारों ओर संन्नाटा है। जहाँ हवा के झोंके अनायास धरती के सूनेपन से टकराते हैं और एक अजीब भयानक शोर जहाँ हरदम फैलता रहता है। और उसके परे विस्तार में धूल, रेह और छोटी–छोटी कंकड़ियाँ सदा उड़ती रहती हैं।

पूरे सप्ताह तक अबोध सुभागी बंती जीजी का नाम ले–लेकर रोयी फिर चुप हो गयी। जमुना महीनों मन–ही–मन रोयी, उसे एक बार फिर लगा, और इस बार बहुत भयानक ढंग से लगा कि वह विधवा है, निःसहाय है। उसके माँ–बाप नहीं है। नैहर भी उजड़ गया है। उसका कोई नहीं है, वह अकेली है– बिल्कुल अकेली। और इतनी शीघ्रता से उसके शरीर की सारी मांसलता, आकर्षण, द्वन्द और चिता की आग में भस्म हो गये, जैसे कोई फूल सहसा डाल से तोड़ दिया गया हो। पुरैना गाँव इस बात को भी लेकर कई दिनों तक चर्चा करता रहा कि उस तार के मिलने के बाद से जमुना कितने जल्दी ढह गयी। वह तो एक तरह से बुढ़िया लगने लगी।

जमुना रात के सूनेपन में जब सोने लगती उस समय उसके ओंठ अनायस काँप उठते, वह निःश्वास भरती हुई बंती जीजी को बार–बार माँ कहकर पुकारती और रो देती। आँसुओं में डूबी हुई आंखों में वह सो जाती, फिर बंती जीजी उसे नित्य प्रति भोर के स्वप्न में मिलती रामायण पड़ती हुई और उसके अर्थ समझाती हुई। हँसती हुई वे अपनी बात दुहरा जाती कि ''देखना पंडित! घबड़ाना नहीं, अपने पर विश्वास करना। तुम में ईश्वर की शक्ति है, उसका अंश है तुम में, फिर हार क्यों? चिंता किसकी?''

बंती जीजी फिर मुस्कराती हुई कहती–''देखना पंडित! सुभागी का पाँव में पूजूँगी। मैं कहीं भी रहूँ तो भी मैं उसका ब्याह रचाऊँगी। पैसे की चिंता न करना पंडित! मैं मदद दूँगी तुझे! बेटी के पाँव पूतने को मिले कहाँ, और फिर सुग्गी ऐसी बेटी।''

यह कहकर बंती जीजी चलने लगती जमुना नींद में दौड़ती हुई उन्हें अपने अंक में बाँध रखने के लिए तड़प उठती और नींद में उसके दोनों हाथ हवा में फैल जाते और जमुना की आँखें खुल जाती।

तड़के भोर ही में वह घर के कारोबार से निवृत्त होकर अपने दो बैलों का सानी–भूसा करती और पदारथ काका को साथ लेकर अपने खेतों में चली जाती।

पहर भर दिन चढ़ते–चढ़ते जमुना फिर अपने धर लौट आती। उस समय तक सुग्गी दरवाजे पर झाड़ू डाल देती, लकड़ी–गोइठें को चौके में रखकर स्नान करती और भोजन बनाने की तैयारी में लग जाती। दोपहरी में जमुना रँगी हुई मूंज से मौनी, पेटरिया और डलबे बिनती और स्वप्न देखती जाती कि सुभागी का किसी अच्छे कुलीन ब्राह्मण के घर मंगल–ब्याह होगा। वह सुभागी के पांव पूज कर उसे दे देगी। उसके डोले में सुहाग की पिटरिया के साथ–ही–साथ उसे एक भार मौनी, मौना, डलिया और डलवे देगी, फिर शाति से वह मर जायेगी।

सुहागी सोलह वर्ष की हुई। रूप, तरूणाई और कनीयता के भार से वह धीरे–धीरे झुक गई और दौड़कर उछलकर चलती हुई सुभागी अब सम्हल–सम्हल कर चलने लगी। आँचल ऊपर से फैलकर कमर में बहुत ही सावधानी से बँध गया। खुले हुए गंदे पैर, गंदी हथेलियाँ और मटमैले गले में एक अजीब आकर्षण और स्निग्धता आ गयी। वाणी में संकोच की पवित्रता और चाल में एक अज्ञात गरिमा आ गयी। बचपन का धूमिल वर्ण धीरे–धीरे गेहूआँ हो गया। काली–बड़री आँखों की पलकें संकोच, राग और झिझक से भारी पड़ गई, और सुभागी स्वयं अपने से लजाने लगी। अज्ञात यौवन के अल्हड़पन पर भोली गंभीरता की रंगीन रेखाएँ इस तरह बिखर गयी जैसे किसी जंगली गुलाब के फूल पर एकाएक सुबह की हवा डोल गयी हो।

पिछले कई महीनों से जमुना की कमर में पीड़ा रहने लगी। वह अब सदैव कराह कर उठती और कराह कर बैठती। और उस पर सुभागी के विवाह की चिंता उसके सर पर इस तरह आ पड़ी थी, जैसे, किसी हरे पेड़ की एक मोटी डाल उसके सीने पर लाकर रख दी गयी हो, और जिसे ढोती हुई जमुना इधर–उधर के गाँवों में मारी–मारी फिरती हो कि कोई दयालू ब्राह्मण उसके सीने के भार को उतार ले।

जमुना अपने भावी दामाद को सर्वस्व दे दी। अपने सब गहने, दोनों गायें, दोनों बैल और उत्तर वाले बाग के वे पाँच आम के पेड़ भी संकल्प कर देगी, जिन्हें जमुना के दिवंगत पति ने अपने हाथों लगाया था।

जमुना ने घर पर रहने तथा देचाने के लिए एक ममेरे भाई को घर पर रख छोड़ा था, और स्वयं परसाद नाऊ को लिए हुए वह अपनी बेटी का वर ढूंढ रही थी। लगातार तीन महीने की दौड़–धूप और अतिशय परिश्रम के बाद उसने गोपालपुर में बात पक्की कर ली, और जमुना जैसे, जी गयी।

लेकिन जिस पक्ष में वहाँ तिलक चढ़ने को था, उस पक्ष के आरम्भ में ही शादी की बात एकाएक टूट गयी। जमुना ने तत्काल वहाँ पदारथ काका और परसाद नाऊ को दौड़ाया, परंन्तु दूसरे दिन वे निराश लौट आए और साथ ही एक बहुत भयानक खबर लाये। गोपालपुर वाले से न जाने किसने यी कह दिया था कि सुभागी जमुना के पति रामतीरथ शुक्ल से पैदा हुई नहीं है। उनसे किसी ने यह बताया है कि रामतीरथ की मृत्यु के पूरे दो वर्षों के बाद जमुना की विधवा गोद में सुभागी आयी थी।

जमुना को यह बात इतनी भयानक लगी जैसे किसी ने उसके सर पर एक बहुत वजनी हथौड़ा मार दिया हो। वह कई दिनांक तक जैसे बेहोश रही और इधर–उधर अपने खेतों में, अपने घर में, पति के लगाए हुए आम के बाग में पागल हिरनी की भाँति डोलती रही। उसके मन ने एक बार कहा कि वह पुरैना गांव में एक सिरे से आग लगा दे और पूरा गांव जलकर भस्म हो जाय, लेकिन दूसरे मन ने उसे समझाया कि विधवा का प्रायश्चित ही यही है कि वह अपने सत्य के लिए सत्य पर ही अड़ी रहे। वह असत्य से सत्त संघर्ष करती रहे और उस दिन की प्रतीक्षा करती रहे, जिस दिन उसका सत्य एक भयानक उल्का बनकर असत्य के सम्पूर्ण विस्तार को अपने क्रोड़ में समा लेगा।

लेकिन सत्य से असत्य कितना शक्तिशाली और भयानक है, जमुना इसे सोचती हुई बार–बार अशान्त हो जाती थी। वह कितनी अकेली है, निरालम्ब, काँटों के बीच में, यह कटु सत्य उसे और भी थका देने वाला था।

उसे पता लगा कि पुरैना गाँव के किन–किन पट्टीदारों ने असत्य की वह भयानक दीवार खड़ी की थी। उनमें से एक वह पट्टीदार था जो जमुना के स्वाबलम्बन, आत्म–सम्मान से ईष्या करता था, जिसकी चिंता यह थी कि जमुना अब तक झुकी क्यों नहीं? उसने अब तक अपने को मिटाया क्यों नहीं? वह हमारे सामने रोती हुई क्यों नहीं आयी? उसे

हमारी सहायता की अपेक्षा क्यों नहीं? दूसरा पट्टीदार वह था जो जमुना का एक और भी दूसरी तरह का आत्मसमर्पण चाहता था। एक दिन गली में उसने जमुना का हाथ पकड़ा था। उस दिन एक ने उस पर फूल फेंका, उस दिन एक ने उस से भद्दा मजाक किया। लेकिन जमुना ने एक–एक को क्या उत्तर दिया?–उनेक्षा, घृणा, दुत्कार और क्रोध ही न!

जमुना अपनी इस विगत स्थिति को सोचते–सोचते चरित्र की आत्मदृढ़ता से भर गयी। उसका विगत भयानक था, आगत भयानक के साथ–साथ कठिन था, लेकिन वह अपने अनागत की मधुर–सत्य प्रेरणा से जी उठती थी।

संध्या का समय था। जमुना अपने घर से निकल, उत्तर वाले बाग में गयी और पति द्वारा लगाये हुए आम के पेड़ो के बीच शांति से खड़ी हो गयी। दूसरे क्षण वह सामने के पतले से पेड़ को अपनी बाहुओं में भर कर रोने लगी। बहुत देर तक निश्चेष्ट रोती रही। एकाएक उसे लगा कि उसकी बाहुओं के बीच रामतीरथ, उसका पति, खड़ा है और वह अपने दाएँ हाथ से जमुना के रूखे सर को धीरे–धीरे सहला रहा है और समझा रहा है–जम्मो! मैं तो तुझे कुछ नहीं कह रहा हूँ, फिर तू क्यों रोती है? मैं तो मानता हूँ न, कि सुभागी मेरे रक्त से है, जिसे तूने अकेले अपने आंसूओं से पाला है। मैं तेरा साक्षी हूँ सुभागी की माँ, तू नख से शिख तक सत्य है। पहले सुभागी तेरे गर्भ में आयी और फिर मैं बीमार पड़ा। रो नहीं जम्मो! तेरा सत्य महान है, अजित है। जा, अब तू घर लौट जा, सुभागी के सामने कभी न रोना! खबरदार!! नहीं तो इस असत्य का प्रभाव उस पर पड़ सकता है!..... रो नहीं, सुभागी की माँ! तू तो कितनी बहादुर है!

जमुना को लगा जैसे किसी ने उसके खुले हुए सर को आँचल से ढक दिया हो और वह स्वयं एकाएक कहीं हो गया हो। और जमुना पेड़ से दूर हट कर चारों ओर शून्य में, संध्या के अंधकार के परे कुछ ढूंढने लगी।

इसके उपरान्त तीन महीने के बीच जमुना ने शादी की बातें और भी कई जगह चलायीं, लेकिन असत्य का अभिशाप उसके आगे–आगे चलता रहा। बातें होती, तय होती और टूट जाती।

परंतु जमुना कहीं झुकी नहीं, उसे इस असत्य ने, लाँछना ने कहीं से भी पराजित न किया। बल्कि उस में उत्तरोत्तर दृढ़ता और तीव्रता आती गयी।

अगहन बीतते–बीतते पदारथ काका रामनगर तहसील से सिकन्दरपुर गाँव से एक विवाह की बात करके लौटे। उन्होंने आकर जमुना से उस वर और घर की सारी बातें बतायीं।

रामनगर तहसील से सीधे पूरब आठ मील की दूरी पर सिकन्दरपुर गाँव पड़ता है। गाँव में बीस घर ब्राह्मण है, पांच घर क्षत्री होंगे और शेष गांव में अहीर, कुरमी, भर, पासी सब तरह के लोग बसते हैं। गाँव का सिवान बहुत फैला हुआ है और धरती खूब उपजाऊ है। रबी, भदैई और अगहनी तीनों तरह की फसलें होती हैं। गाँव का पूर्वी सिवान चौरस है, दक्खिन सिवान सोयी है, कुछ नीची जमीन। पश्चिमी सिवान में आम–माहू–बरगद–पीपर–कटहल–नीम और शीशम आदि का घना बाग है और उसके किनारे–किनारे जमीन की एक पतली पट्टी में अरहर और बाजरे की खूब खेती होती है। उत्तरी सिवान कछार है, और इस सिवान के अंत पर गाँव का गहरा तालाब है।

वर तिवारी ब्राह्मण है और गांव में उसका घर अच्छा बना हुआ है। उसके घर में धन–दौलत सब कुछ है, लेकिन परिवार कम है। चार वर्ष हुए छः महीने के बीच ही में माँ–बाप दोनों का स्वर्गवास हो गया। फिर घर में वर, बूढ़ी दादी और उसकी पत्नी यही तीन शेष रह गये। वर पहले कलकत्ते में नौकरी करता था और खूब कमाकर उसने घर भी भर दिया, लेकिन जब से घर पर माँ–बाप नहीं री, तब से वह घर पर ही है, क्योंकि घर पर खेती–बारी अच्छी है, उसे किसी और की देखरेख पर छोड़ कर बाहर नौकरी करने जाना, इस जमाने में अब ठीक नहीं है। इस तरह माँ–बाप के मरने के बाद लड़के के सर पर सारी जिम्मेदारी आ गयी। इसी बीच फिर क्या हुआ कि अभी पिछले साल सिकन्दरपुर गाँव में ताऊन का प्रकोप हुआ। और महारानी ने सबसे पहले उस गाँव में उसी लड़के की पत्नी को ले लिया। जब से पत्नी का स्वर्गवास हुआ, उसका हाता जैसा धन–धान्य से भरा हुआ घर सूना पड़ा है।

''अब इस समय लड़के की उम्र क्या है?'' जमुना ने पदारथ काका से पूछा।

पदारथ काका ने लड़के की कुंडली–जन्मपत्री जमुना को देते हुए बताया कि वर की अवस्था इस समय ज्यादा से ज्यादा चौबीस वर्ष की होगी और उसका नाम परमानन्द है।

जमुना ने तत्काल वर और कन्या की जन्मपत्री को अपने पंडित से दिखवाया। पंडित ने दोनों राशियों को जोड़ते हुए बताया कि वर–कन्या का बहुत अच्छा संयोग है। गणना भी दोनों की अच्छी ही है। यह बात जरूर है कि दोनों की राशियों में राहू प्रबल है, लेकिन बृहस्पति और चंद्र दोनों अच्छे स्थानों पर हैं। इन ग्रहों का राहू पर पूरा ध्यान रहेगा और दोनों एक दूसरे को पाकर बहुत प्रसन्नता से रहेंगे।

जमुना को शांति मिली। पदारथ काका शादी की बात बिल्कुल पक्की करके आए थे। लेकिन उसके मन में गाँव की लाँछना की बात चोर की भाँति अपनी आँखें दिखा रही थी। पदारथ काका ने जमुना को यह निश्चित बता दिया कि

रामानन्द को यहाँ की शादी बिल्कुल मंजूर है और वह तत्काल पहले ही लग्न में ब्याह चाहता है। उसे लेन–देन की भी कोई बात नहीं है। वह बस, सुभागी जैसी लक्ष्मी लड़की ही चाहता है, जो उसके उजड़ते हुए घर को बसा ले। बस, और वह कुछ नहीं चाहता। जमुना को रामानन्द की सारी स्थितियाँ, उसकी बातें पसंद आई, उसे ब्याह हो जाने का सुंदर भविष्य भी दिखाई दे रहा था। फिर भी वह कहीं से, किसी भी तरह से यह नहीं चाहती थी कि कोई भी कभी झूठी लाँछना उठाए और सुभागी का जीवन विषाक्त हो। वह यह भी नहीं चाहती थी कि निःसहाय, पतिता या विधवा समझ कर, उसे और उसकी सुभागी का उद्धार करने के लिए कोई अपना सम्बन्ध जोड़े।

जमुना दूसरे ही दिन पदारथ काका और अपने पुरोहित को लेकर रामनगर की ओर रवाना हो गयी। रामनगर तक वह लारी पर आयी, इसके बाद वह सिकन्द्ररपुर के लिए पैदल चल पड़ी।

सिकन्द्ररपुर से गांव के फासले पर जमुना पंडित के साथ उसी गाँव के एक कुएँ पर रूक गयी और उसने पदारथ काका को सिकन्दरपुर, रामानन्द को बुला लाने के लिए भेज दिया।

उस समय दो घंटा दिन शेष था जमुना ने हाथ–पैर धोकर पानी पिया और शांति से सिकन्दरपुर की ओर देखने लगी। पुरोहित जग्गी शुक्ल ने जमुना को सलाह दी कि क्यों न तब तक वे दोनों वहीं गाँव के लोंगों से रामानन्द के घर–परिवार–स्थिति के बारे में कुछ जानकारी लें। जमुना को जग्गी की बात बिल्कुल पसंद न आई। क्योंकि उसका विश्वास ही नहीं, उसका सत्य अनुभव था कि गाँव इन मामलों में कितने झूठ होते हैं। आत कोई अपना हित है तो उसकी वाह! वाह!! सब सोना! लेकिन कल थोड़ी–सी अनवन हो गई तो लाख लाँछन! उसकी सब तरह की बुराई, उसकी समुची जड़ काट देने के लिए तत्पर और अगर उसमें थोड़ी सी आत्म मर्यादा है तब तो गांव की वह आपसी अनबन–क्रोध–मनमुटाव तत्काल बैर–प्रतिहिंसा में परिणत हो जाता है। उसको उखाड़ने के लिए झूठे लाँछन, अफवाहें और उड़ती हुई कहानियाँ गढ़ने में कितनी देर! जहाँ चाहे वहां हवा में सुन लीजिए– 'अरे उसने तो रूपया लेकर फलाँ जगह लड़की शादी की है। वह उस दिन लड़की के के घर खा भी आया है। उसने अपने माँ–बाप की क्रिया नहीं की और आज उनके मरे दो वर्ष हो गए। उसके चार बीघे खेत गिरवी हैं। उसकी लड़की चौदह वर्ष की हो गयी और वह अब तक अपने घर में बैठाए हुए है। उसके यहाँ तो आज कल एक ही समय खाना बनता है। वह तो चोर है, कल फलाँ के खेत में फसल काटते हुए पकड़ा गया। उसकी काकी विधवा है और न जाने कैसे पैर भारी हो गये। उसके घर तो चला आया है कि ऊपर से रामराम, भीतर से कसाई का काम। कौन बातें करें उसके घर की, गाँव की नाक काट ली उसने उस दिन।''

इस तरह जमुना गाँव की आत्मा के अणु–अणु से परिचित थी। पुरैना गांव ने उसे स्वयं अपना कितना बड़ा शिकार बनाया था, इसे वह कभी नहीं भूल पाती थी। वह जहां कहीं भी किसी बड़े–भरे पूरे गांव को देखती थी, उसे लगता था, जैसे यह कोई पुरानी बावली है, जिसे गांव वालों ने स्वयं फाबड़ों से खोद–खोदकर बनाया है।बावली पानी सी भरी है और उसके चारों ओर बड़ी ऊँचीं–ऊँची खन्दकें हैं, जिनसे न बावली का पानी बाहर जाता है न बाहर का पानी आता है और न जाने कबसे बावली का पाली हरा होकर गन्दा और घिनौना हो गया है और लोग उसमें मेढकों की तरह टर्रा रहे हैं।

जमुना जग्गी पंडित को लेकर कुएँ से आगे बढ़ गयी और गांव से बिल्कुल बाहर एक आम के पेड़ के पास चली गयी और वहाँ बैठी हुई पदारथ का रास्ता देखने लगी।

एक घंटा दिन शेष रह गया, तब पदारथ काका एक नौजवान को साथ लिए हुए सामने से रास्ते पर आते हुए दिखाई पड़े। जमुना की दृष्टि दूर से ही उसे नौजवान पर टिकी हुई थी। खूब ऊँचा कद है, छरहरा जवान, बड़ी गम्भीर चाल है। धोती गाँठ से बहुत नीचे नहीं गयी है। कुर्ता लम्बा है और उसकी बाहें ऊपर चढ़ी हुई हैं, जैसे, वह कहीं खेत में काम कर रहा था। कन्धे पर सफेद अंगोछा है और पाँव नंगे हैं।

पदारथ काका ज्यों–ज्यों आम के पेड़ के पास आते जा रहे थे, जमुना की अपलक दृष्टि में उस व्यक्ति का चित्र उतना ही साफ स्पष्ट होता जा रहा था। कोई बनावट नहीं, कोई शान नहीं, जैसे, जिन्दगी की परिस्थितियों और संघर्षों ने उसे असमय गम्भीर और सौम्य बना दिया हो।

जमुना ने सफेद चादर से अपने को ढक लिया था। वह बिछे हुए कम्बल पर बैठी थी और उसकी दृष्टि पास पहुँचते हुए उस व्यक्ति पर थी।

रामानन्द ने निःसंकोच, आगे बढ़कर जमुना के पैर छूना चाहा, लेकिन जमुना ने उसे संभाल लिया और उसकी मातृवत् आँखें स्नेह और श्रद्धा से एकाएक डबडबा आयी। वह रामानन्द को देखकर गद्‌गद् हो गयी, उसे लगा, जैसे वह उसका किसी जन्म का बेटा हो और उसे एकाएक मिल गया हो।

जमुना को उसके चेहरे की गम्भीरता में एक अजीब सा आकर्षण मिला। उसकी बड़ी–बड़ी शान्त आँखों में प्यार–स्नेह देने की इतनी क्षमता भरी थी कि जमुना मन–ही–मन प्रसन्नता से पागल हो उठी।

जमुना चुप थी, पण्डित और पदारथ आपस में बातें करने लगे थे। रामानन्द उनकी बातों का बहुत ही थोड़े–थोड़े शब्दों में उत्तर देता जा रहा था। लेकिन जमुना मौन थी, उसका जी भर गया था।

सब लोग बातें कर रहे थे, और जमुना मानो रामानन्द के पार्श्व में बैठी हुई सुभागी को देख रही थी। यह रामानन्द यह सुभागी। यह मेरी बेटी, यह मेरा दामाद। यह सुभागी इसकी दुल्हन, यह रामानन्द उसका दूल्हा। दूल्हन गोरी, दूल्हा गेहुआं। सोलह वर्ष, चौबीस वर्ष, जमुना मन–ही–मन, गीत की एक पंक्ति गुनगुना उठी– 'ऐसा वर खोज्यो बाबा अँचरा पसीजै नैना करे मनुहार, झुक–छिप हम राजा, देहियाँ निहारी, डेवढ़े हों सजना हमार।'

और जमुना स्वप्न देखती हुई सोचती जा रही थी, मेरी बेटी और मेरे दामाद की गृहस्थी, पति और धर्मपत्नी का स्वर्णिम संसार। फिर जमुना देखने लगी, रामानन्द के बायें, सटी हुई सुभागी बैठी है और सुभागी के अंक में दो बच्चे हैं– एक माँ का दूध पी रहा है, एक उसके अंक में खेल रहा है। बच्चों का पिता रामानन्द उन्हें देख–देखकर मुस्कराता जा रहा है।

जमुना की आँखों से सहसा आँसू गिरने को हुए, लेकिन उसने अपने को संभाल लिया और स्वप्न के भावलोक से वह नीचे उतर आयी।

उसने रामानन्द से कहा, ''बेटा! पंडित और पदारथ काका ने तुमसे सब बातें साफ कर दी। तुम अब मेरे हो गये, यह भी मुझे लग गया। इसीलिए में चाहती हूँ कि तुमसे और मेरी बेटी में कोई किसी तरह का पर्दा न रहे। जिससे चरणों में मैं अपनी बेटी दे रही हूँ उससे क्या छिपाना। पुरैना से चलकर यहाँ तक जो मैं आयी हूँ, और बेटा! मैंने तुम्हें भी यहाँ तक आने का कष्ट दिया है, उसका केवल एक ही कारण था! उसे मैं तुझे साफ–साफ बता रही हूँ– सुभागी जैसे ही मेरे गर्म में आई, उसके कुछ ही दिन बाद उसके पिता को एक मामूली–सी बीमारी हुई और वे उसे छोड़कर चले गये।''

जमुना रो पड़ी। अपने को संभालते–संभालते उसका आँचल आँसुओं से भीग गया। कुछ क्षणों के उपरान्त उसने फिर कहना आरम्भ किया, ''उनके स्वर्गवास होने पर मेरी बेटी पैदा हुई और उसे लेकर उसके जीवन के बहाने विवश होकर मैं भी जीने लगी, नहीं तो यह निश्चिय था कि अगर सुभागी मेरी गोद में न आयी होती तो मैं पुरैना ऐसे गाँव में एक क्षण भी नहीं रहती, अपने जीवन को समाप्त कर लेती। लेकिन मुझे जीना पड़ा और इसी जीने के लिए पुरैना गाँव ने मुझे इतनी यातनाएँ दी, मुझे इतना सताया कि मैं कह नहीं सकती बेटा। सबसे अधिक रोना तो इस पर है कि पुरैना वालों ने मुझे सताया, मुझसे दुश्मनी की, अच्छा किया, लेकिन मेरी बेटी ने उन लोगों का क्या बिगड़ा था, उससे उन लोगों की क्या दुश्मनी थी!''

जमुना फिर फफककर रोने लगी और अपने को संभालती हुई कहने लगी, ''जब मैं बेटी की शादी ढूंढ़ने लगी तब पुरैना गाँव वालों ने यह लाँछना उड़ा दी कि सुभागी अपने बाप की बेटी नहीं है, मेरे पति के स्वर्गवास के दो वर्ष बाद उसका जन्म हुआ है!''

जमुना रोती हुई कीने लगी, ''बेटा किसी ब्राह्मण ने सच्चाई समझने का प्रयत्न नहीं किया और सब मेरे नाते को तोड़ते गए। किसी ने मेरी अग्निपरीक्षा नहीं ली और दूसरों की बात में आकर लोगों ने गंगा जैसी पवित्र मेरी बेटी को न जाने क्या समझ लिया!''

''लेकिन मैं तो और कुछ नहीं समझता,'' रामानन्द ने बीच ही में एकाएक कहा। ''मैं भी ब्राह्मण पट्टीदारों के गाँव में रहता हूँ, मुझे खूब मालूम है कि वे कितने रंग बदलते हैं। आप घबड़ाइए नहीं, मेरी ओर से बिल्कुल चिन्ता न कीजिए।''

''मुझे तुम पर पूरा विश्वास है बेटा,'' जमुना ने आँसू पोंछते हुए कहा, ''तभी मैंने तुम्हारे सामने अपना सब कुछ कह दिया। और यह भी सुन लो बेटा, मैंने अपनी बेटी को तपस्या और आँसुओं से पाला है। बहुत ही अच्छी लड़की है वह, बिल्कुल तुम्हारे ही योग्य.....।'' यह कहते–कहते जमुना ने बढ़कर रामानन्द का पैर छू लिया, और दो रूपये उस पर रख दिये।

दिन डूबने में थोड़ी–सी देर थी। जमुना का मन भर गया था और उसके सामने रामानन्द संकल्प की भावभूमि पर पुत्रवत् खड़ा था।

पेड़ों की परछाइयाँ लम्बी और घनी होती जा रही थीं। जमुना, पंण्डित, पदारथ काका के साथ रामनगर के रास्ते पर बढ़ रही थी और रामानन्द उन्हें विदा देकर उसी आम के पेड़ के पास खड़ा था। उसे लग रहा था, उसके बाएँ कोई खड़ा है, और वह चुप है। रामनगर के पथ से जैसे उसकी माँ चली जा रही है और वहाँ उसकी लक्ष्मी खड़ी है।

बैसाख–शुक्ल पक्ष के एक अत्यन्त शुभ लग्न में सुभागी का ब्याह रचा। सिकन्दरपुर से पुरैना बारात आयी। लेकिन वह बारात केवल जमुना के ही लिए आयी। गाँव के ब्राह्मण पट्टीदारों ने इसमें भाग न लिया, शेष लोगों ने अवश्य जमुना को यथासम्भव सहारा दिया। पट्टीदारों को अपने–अपने में अत्यन्त पीड़ा इस बात की थी कि कैसे एक कुलीन ब्राह्मण के घर, गाँव से विरूद्ध रहते हुए भी जमुना ने शादी तय कर ली, और शादी हुई भी जा रही है। पट्टीदार पराजय की इस सहज ज्वाला से जल–भून गए, लेकिन उनकी एक भी न चली।

पट्टीदार खड़े दूर से तमाशा देखते रहे। जमुना अपनी आँखों में आंसू लिए, लेकिन कमर कसे हुए सारे कार्य का संचालन स्वयं कर रही थी। वह दौड़कर रसोईघर में जाती, आँगन के मड़वे में दौड़ती, बाहर दरवाजे से लगकर बाहरी प्रबन्ध करती, चुपके से अपनी एकाकीपन और दिवंगत पति की सुधि करके रो भी लेती और दौड़ी–दौड़ी स्त्रियों को लेकर गाने भी लगती :

काँपइ हाथी रे काँपई घोड़वा काँपई नगरा के लोक,
हथवा में कुस ले–ले काँपे ले बाबा कब दोनों उगरह होई।
रहँसइ हाथी रे रहँसइ घोड़वा रहँसइ सकल बराति,
मँड़वे मुदित मन समधी रे बिहसइ भले घर भइल विवाह।
गंगा में पइठि बाबा सुरूज गोड़े लागे मोरि बूते धिया जनि होय,
धियवा जनम दीह हो विधाता जब घर सम्पति होय।

गाँव खड़ा–खड़ा देखता रहा। जमुना के द्वार पर बारात की अगुवानी हुई, द्वार–पूजा हुई, दूल्हा मंडप में गया, और मंगल गीत से अकेली जमुना ने अपने सूने घर की सारी दीवारों को रंग दिया।

सुभागी सुहागन हुई और जमुना ने अपने सूने आँचल को आकाश की ओर फैलाकर डबडबायी हुई आँखों से गा दिया– ''जुग जीवों चन्दा, जुगुति राख्यो धिया मोर भयली सुहागन आज।''

बड़हार के दिन पुरैना के पट्टीदारों ने जमुना के घर भात न खाया, और वे लोग दूर खड़े देखते रहे। लेकिन बारात ने भात खाया। मड़वा हिलाया गया और जमुना ने अपना सर्वस्व सुभागी को विदा करते–करते दे दिया– अपने सब गहने, अपनी सब पूँजी। उसने सुभागी को केवल अपनी उस नथनी और बेसर को अवश्य नहीं दिया, जिसे पहनकर वह स्वयं सुहाग के डोले पर चढ़ी थी और भविष्य में विधवा हो गयी। इसीलिए वह उसे अशुभ मानती थी और उसने उनको धरती में गाड़ रक्खा था।

फिर भी जमुना ने अपने हाथों से सुभागी को नख से शिख तक सजाकर, बेटी से दुल्हन बनाकर रूदन और आँसुओं के बीच उसने उसे अपना भेंट अकवार दिया। लेकिन जमुना के पाँव, दुल्हन सुहागन बेटी के साथ आँगन से आगे बड़े। वह आँगन से ही बेटी को विदा देकर, स्वयं एक कमरे में जा छिपी, ताकि डोली में बैठती हुई उसकी सुहागन बेटी पर उसके वैधव्य की कहीं छाया न पड़ जाय।

पुरैना के ब्राह्मण खड़े देखते रहे। सिकन्दरपुर से पुरैना गाँव में बरात आयी और सुभागी का रोता हुआ शुभ–सोहाग का डोला बड़े पीर बाबा वाले बाग को पार करता हुआ, रेहार वाली डहर से दूर चला गया।

सिकन्दरपुर में जब सुभागी का डोला उतरा, उस समय एक घंटा रात बीत गयी थी। लेकिन गाँव में अपने अपूर्व ढंग से चहल–पहल थी। रामानन्द का घर गाँव की दुल्हनों और अन्य पर्दानशीन औरतों से भरा था। दरवाजे पर, बरामदे में गाँव के और नौजवान बैठे थे। बाहर दरवाजे की सहन में गाँव के छोटे–छोटे लड़के प्रसन्नता से खेल रहे थे और सामने कुछ लड़के इधर'–उधर मिट्टी, धूल और घास में उन बिखरे हुए पैसों को ढूंढ रहे थे, जिन्हें रामानन्द की दादी और मामी ने दुल्हन के डोले पर फूलों के साथ बरसाया था।

उसी रात को गाँव भर में– घर–घर चर्चा होने लगी कि रामानन्द कितना भाग्यशाली है। इतनी सुन्दर, सुशील और गुणी दुल्हन उसे मिली है कि उसकी बराबरी गाँव भर में कोई नहीं कर सकता। कितना सामान वह अपने साथ लायी है, विदाई के इतने बड़े–बड़े दो बक्से, बर्तन, सीघा–पिसान, मौनी–दौरी–डबले–डलिया, पाँच भार मिठाई और एक दुधार गाय। रामानन्द राजा हो गया और घर में उसने साक्षात् लक्ष्मी पा ली। फिर दुल्हन में, अपने पर मिल भर गुमान नहीं। उसने एकएक औरत का पाँव छुआ और यथोचित सबकी पाँव छुआयी भी दी।

फूल जैसी कोमल, चन्दा जैसी सुन्दर, वह पक्के दो घंटे तक खुद ढोलक बजाती हुई अनेक तरह के गीत सुनाती रही, न जाने कहाँ से उसे इतने गीत याद याद थे..... गजब का गला पाया है। खूब दुल्हन मिली रामानन्द को!

मुख्यतः ये बातें गाँव की कुमारी लड़कियाँ और माताएँ कर रही थीं। लेकिन गाँव की दुल्हनें और बूढ़ी औरतें अपने–अपने ढंग से दो और तरह की बातें कर रहीं थीं। दुल्हनें अपेक्षाकृत चुप थी, केवल वे इतना ही अपनी–अपनी ननदों और पतियों से कहकर चुप थीं, केवल वे इतना ही अपनी–अपनी ननदों और पतियों से कहकर चुप हो जाती थीं ''कि दुल्हन अच्छी ही है, डोले से उतरने पर सब की वाह–वाह होता है.. लेकिन .....।'' इसके बाद दुल्हनें अपने–अपने विषय में बातें करने लगती थीं, अपनी विदाई और अपने नैहर की बात। बूढ़ी औरतों में एक अजीब ही तरह की फुसफुसाहट हो रही थी– ''कलमुही माँ की बेटी है न! जभी बड़े गुण और रूप हैं! ..... नाम बड़ा दरसन थोर। कुल परिवार बाप–दादे की नाक कटाई रामानन्द ने। इसी मनसा पाप से उस की लक्ष्मी जैसी पहली पत्नी मरी है, अब आयी है इसकी पारी, देखों लोग बारी–बारी।''

विवाह के पन्द्रह दिनों के भीतर रामानन्द के घर से सब पहुने–हित–सम्बन्धी अपने–अपने घर को बिदा हो गए। सुभागी को अकेलापन न लगे, रामानन्द ने आग्रह करके बुआ और मामी को अपने घर रोक लिया।

दादी की प्रबल इच्छा थी कि दुल्हन को कम–से–कम छः महीने तक चौके में चूल्हे के पास न बैठने दिया जाय, लेनि सुभागी अपने आग्रह से दादी को वश में कर दूसरे ही महीने चौके में जा घुसी और गृहस्थी को उसने अपने कंधों पर उठा लिया।

प्रातःकाल बड़े भोर में ही सुभागी सो कर उठ जाती और सारे घर का झाड़ू वह तक दे चुकी होती, जब तक दादी और बुआ बगैरह उठती थीं। स्नान करने के बाद सुभागी नित्य–प्रति सबके लिए कुछ न कुछ नाश्ता अवश्य तैयार करती। दोपहर में सब को खाना खिला कर जैसे, ही वह छुट्टी पाती, गाँव की विशेषकर वे कुमारी लड़कियाँ जो ब्याहने योग्य हो गयी थीं, सुभागी को घेर कर बैठ जाती थीं। पूरी दोपहरी वह उन्हीं लड़कियों में बिता देती। किसी को भजन सिखाती, कागज पर लिखवाती और किसी–किसी को वह सीना–पिरोना, काढ़ना और बिनना भी बताती। इसके उपरान्त वह फिर घर–गृहस्थी के कार्य में लय हो जाती और रात के दस बजे तक कहीं सर उठा पाती।

सोने के पहले जब वह दादी के सर में तेल लगाने जाती, उस समय दादी की आँखें स्नेह के आँसूओं से भीगी रहती। वह शिकायत करती, ''दुल्हन बेटी! तू क्यों इतना काम करती है। न मुझे कुछ करने देती है, न अपनी बुआ और मामी को, सबके हाथों से छीन–छीन कर काम करती है। यह ठीक नहीं। मुझे बहुत दुख होता है, लेकिन तू मेरी मानती ही नहीं। अभी तो तू डोले से उतरी है, अभी सब तरह के सुख–विलास मिलना चाहिए। दसीलिए तो मैंने बुआ और मामी को रोक लिया है, लेकिन एक तू है कि.....।'' सुभागी दादी को कुछ उत्तर न देती, वह बच्चों की तरह मुस्कराती और दादी के चरणों को अपने आँचल से छू कर बुआ–मामी के पास चली जाती। कुछ–न–कुछ क्षणों तक वह उनके पैरों को दबाती और घर में जब सब सो जाते तब वह अपने कमरे में जाती औश्र इस तरह गृहस्थी के एक दिन का चक्र पूरा हो जाता।

यद्यपि वह चक्र सुभागी ऐसी दुलारी–कोमल लड़की को थका देने वाला था, क्योंकि उस चक्र में जितना भार था, उससे भी अधिक उस में एक ऐसी गति थी जिसके साथ सुभागी को बहुत तेजी से दौड़ना पड़ता था। लेकिन वह कभी थकती न थी, बरन् अधिकार–सुख और पति के अनन्य प्रेम से वह बहुत ही प्रेरित रहती थी।

सुभागी रामानन्द को मनुष्य के रूप में देवता की भांति देखती थी। उसे यह बात कभी नहीं भूलती थी कि पुरैना गांव वालों ने किस तरह उस के विवाह की जड़ में मट्ठा डाल दिया था। वह कलमुही की बेटी घोषित कर दी गई थी और उसका विवाह किसी कुलीन ब्राह्मण के घर होना बिल्कुल असंभव सा हो गया था। लेकिन माँ–बेटी की लाज रक्खी तो इसी देवता ने।

कितना चौड़ा सीना है मेरे बालम का, कितनी बड़ी–बड़ी बाहें हैं, मेरे देवता की, कितनी गहराई है मेरे साजन की आँखों में– सुभागी की अनुभूतियाँ हरदम इन्हीं भावों में पगी रहती थी।

रामानन्द को पीढ़े पर बैठा कर जब उसे भोजन कराती थी, तब वह पंखा झलाती हुई थोड़े से घूंघट की ओट से उसे अपलक देखती थी। जब वह घर से कहीं बाहर दरवाजे अथवा दरवाजे से कहीं खेत–सिवान तक भी जाने लगता, तो सुभागी बाहर दरवाजे पर आधी खुली हुई किवाड़ के पीछे छिप कर खड़ी हो जाती और जाते हुए रामानन्द को तब तक देखती रहती थी जब तक वह आंखों से बिल्कुल ओझल हो जाता, पंजे पर खड़ी–खड़ी देचाने पर भी जब वह नहीं दिखाई पड़ता, तब वह कुछ गुनगुनाती हुई–भीतर आँगन में चली जाती।

और प्रत्येक संध्या को, जब सुभागी अपने आँगन में खड़ी हो कर नीले आकाश की ओर देखती, और पाती कि चिड़िया अक अपने–अपने बसेरे को जा रही हैं, तब उसे नित्य उसी समय अपनी माँ जमुना की याद आती थी।

सुभागी के लिए माँ की स्मृति में कितनी करूणा थी, कितनी पराजय और थकान थी, इसे सोचते ही उसकी आँखें नित्य संध्या को बरस पड़ती थीं।

वह फिर आँगन से पिछवाड़े, खिड़की की ओर चली जाती और खिड़की के चौखट पर खड़ी होकर करूणापूर्ण आँखों से दूर सूने आकाश को देखने लगती– वह सूना आकाश जो सिकन्द्ररपुर से फैलता हुआ चुपचाप पुरैना तक चला गया था। वह क्षण भर में पुरैना पहुँच जाती और देखती माँ बीमार खाट पर पड़ी है। दरवाजे पर अब कोई जानवर नहीं है। सब खेती पदारथ काका की जिम्मेदारी पर है। क्योंकि माँ के पास न अब किसी चीज का साहस है न उत्साह। उस की कमर झुक गयी है, आँखों में अब रोशनी न रही।

''क्या हो गया माँ, तुझे जल्दी?'' सुभागी शून्य में ही यह पूछ बैठती। और वह उत्तर में सुनने भी लगती कि माँ मानो कराहती हुई धीरे–धीरे कर कह रही है– ''बेटी! मैं तो मर तभी गयी थी, जब तेरे बाबू जी का स्वर्गवास हो गया, लेकिन मैं केवल तेरे लिए जी रही थी, क्योंकि तुझे जिलाना था। अब तू जी गयी, सुहागन होकर अपने घर चली गयी। अब मेरे जीने का धर्म समाप्त हो गया। ..... फिर पुरैना ऐसे गाँव में एक मुर्दा कहाँ तक जीए बेटी?''

सुभागी, माँ से जिन बातों को अपने शून्य में सुनती थी अथवा अनुभूति के आधार पर कल्पना करती थी उनमें से बहुत बातें सत्य थीं। आते–जाते आदमियों से पता चलता था कि अब माँ की दशा दिनों–दिन बिगड़ती जा रही है। उसे उठने–बैठने में कष्ठ होता है। उसकी दायीं आँख से बहुत कम दिखाई पड़ता है।

भादों उतरते–उतरते बुआ और भाभी अपने–अपने घर चली गयीं और सुभागी अपनी घर–गृहस्थी में अकेली बुढ़िया दादी के साथ रह गयी।

माँ की याद अब सुभागी को और भी आने लगी। घर के कारोबार से जैसे ही उसे क्षण भर की छुट्टी मिलती, माँ की याद उसे पागल बना देती। वह खिड़की पर जा कर खड़ी होती और उस की आँखों से आँसू गिरने लगते।

जमुना कभी भी अपनी वास्तविक मनोदशा या स्थिति से सुभागी को परिचित न होने देती थी। वह कभी न चाहती थी कि उसकी करूणा और विपत्तियाँ बेटी की सुख–शान्ति पर अपनी काली छाया डालें। लेकिन उसकी प्रतिक्रिया से सुभागी और भी अशान्त और चिन्तित रहती।

सुभागी ने एक रात स्वप्न में देखा कि माँ बहुत बीमार है। उसकी नींद तुरन्त खुल गयी और वह तत्काल रोने लगी। उसने रामानन्द से आग्रह किया कि वह सुबह ही पुरैना जाय और माँ को यहाँ लिवा लाए।

रामानन्द जब पुरैना पहुँचाख उसने देखा, वास्तव में जमुना बीमार पड़ी थी और वह पूर्णतः निःसाह थी। रामानन्द को देखकर उसे पूर्ण शान्ति मिली। लेकिन आज उसने जमुना को सिकन्दरपुर, सुभागी के पास ले चलने की बात चलाई, उस समय वह रो पड़ी। उसने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए रामानन्द से बताया, ''मैं जल्दी अच्छी हो जाऊँगी, बैटी से कहना कि वह मेरी चिन्ता न करे, मैं अभी मरूँगी नहीं। और बेटा! मैं बेटी के गाँव कैसे जा सकती हूँ! मुझे तो उसका सिवान नहीं काँड़ना चाहिए, उसके यहाँ जाने की बात तो दूर रही। मैं ब्राह्मणी हूँ और सुभागी के बाबू जी इस क्षेत्र के बड़े पंडित थे, मुझे उनकी मर्यादा का पालन करना चाहिए न!''

रामानन्द ने दूसरा प्रस्ताव यह किया कि वह सुभागी को ही पुरैना भेज दे और वह तब तक माँ के पास रहे, जब तक उसकी तबियत बिल्कुल ठीक न हो जाए। जमुना ने दामाद का यह प्रस्ताव भी स्वीकार न किया। वह बार–बार इसी सत्य को दोहराती रही कि ''मेरी बेटी जहाँ है, वहीं सुख और शान्ति से रहे। मैं कभी नहीं चाहती कि मेरी सुभागी मेरे इस दुश्मन गाँ पुरैना में आए। मैं तो यहाँ तक भी नहीं चाहती कि मेरे मरने के बाद मेरी लाश इस गाँव के सिवान या धरती में जलायी या गाड़ी जाए।''

जिस सुबह को रामानन्द पुरैना से विदा होने वाला था, उस सुबह उसने देखा, जमुना का बुखार बहुत तेज हो गया था। बलगम से उसका सारा सीना जकड़ गया था। रामानन्द ने घर लौटने का विचार छोड़ दिया और वह जमुना की खाट सम्हाले वहीं बैठ गया।

बाँसी से कई डाक्टर आए। सुबह से शाम तक जमुना को न जाने कितने इन्जेक्शन दिये गये, लेकिन उसकी दशा बिगड़ती गयी।

रात के पिछले पहर, जमुना एकाएक ठीक–सी हो गयी। उसका बुखार सहसा उतर गया। रामानन्द ने उसका पूरा शरीर छुआ, पूरा ठण्डा हो रहा था। जमुना आँखें खोले रामानन्द को देख रही थीं। उसके पीले चेहरे पर रोशनी की

एक मद्धम–सी झलक उळार रही थी। गले और सीने का बलगम बैठ गया था। वह बहुत ही अस्पष्ट स्वर में अब राम–राम शब्द का उच्चारण भी करने लगी।

रामानन्द को शान्ति थी। वह कमरे से निकलकर रात का अन्दाज लगाने के लिए आँगन में चला आया। आकाश में उसने देखा, सितारे कम हो चले थे। उत्तर के सात–तारे पश्चिम दिशा में बढ़ गये थे। वृहस्पति तारे का वर्ण पीला हो चुका था और पूरब का शुक्र उदित हो गया था।

रामानन्द थोड़ी देर तक आँगन में घूमता रहा, फिर वह दबे पाँव जमुना के कमरे में चला आया। जमुना शान्त–निश्चल पड़ी थी। उसने उसके मुख पर से वादर हटा कर देखा और वह पत्थर सा रह गया। जमुना वहाँ न थी। वह इतने ही क्षणों में साँसें तोड़ चुकी थी और उसकी मुर्दा आँखें यद्वपि खुली रह गयी लेकिन वे हमेशा के लिए शान्त ही चुकी थीं। ओंठ दांयी ओर टेढ़े होकर पथरा गये थे।

रामानन्द राया नहीं, वह जमुना के मूँह को भली–भांति ढँक कर, सिराहने बैठा, अनवरत गति से राम–राम कहने लगा और अंधकार में देखने लगा, सुभागी चींखती और करूणा विलाप करती हुई माँ के शव से लिपट गयी है।

जमुना के शव को सुबह टिकठी पर रखकर, रामानन्द पदारथ काका के सहारे पुरैना गाँव से बांसी लाख। बहुत ऊँचे किराए पर उसने एक टैक्सी की, और सड़क से सरजू नदी की ओर चल पड़ा। अयोध्या–घाट पर पहुँचकर उसने चिता का सारा प्रबन्ध किया और तीसरा पहर होते–होते उसने सरजम के तट पर जमुना की दाह–क्रिया कर दी और कफन का टुकड़ा लिए हुए वापस चल पड़ा।

सिकन्दरपुर पहुँचकर रामानन्द एक बार अवश्य रोया, लेकिन जब वह अपने घर के दरवाजे पर आया, उसके आँसू सूख गए।

अंत्येष्टि क्रिया के समस्त व्यापारों से रामानन्द दुसरे महीने निवृत्त हो सका। उस दिन वह पूरे डेढ़ महीने के बाद घर में गया। आँगन बहुत सूना था। वह सीधे अपने कमरे में गया। सुभागी वहाँ भी न थी। वह खिड़की की ओर गया। उसने देखा, सुभागी दरवाजे के सहारे खड़ी थी।

''ओ! मेरी मालकिन!!'' रामानन्द ने प्यार से पुकारा और तेजी से आगे बढ़कर वह सुभागी के सामने खड़ा हो गया।

सुभागी फौरन वहाँ से मुड़ी। अपने कमरे में आयी और रामानन्द को गोद में अपना सिर छिपाकर इस तरह फूट–फूट कर रोने लगी जैसे रामानन्द ही जमुना और सुभागी चार वर्ष की सुग्गी हो। वह कुछ कह नहीं रही थी, बस बच्चों की तरह रोती जा रही थी।

रामानन्द उसे समझा रहा था–''अब क्या फायदा होगा रोने से! उसका मर जाना ही अच्छा हुआ। वह बहुत प्रसन्न थी, मरते समय। उसकी सारी मनोकामना पूरी हो गयी। उसके लिए मत रोओ सुभागी! नहीं तो स्वर्ग में उसकी आत्मा को कष्ट होगा!''

''सच, कष्ट होगा?'' सुभागी एकाएक चुप सी हो गयी।

''हाँ, जब तुम रोओगी, तब उसकी आत्मा भी अशान्त होकर रोएगी,'' रामानन्द ने बताया, ''और जब तुम हँसोगी, प्रसन्न रहोगी तब उसकी आत्मा उसकी आत्मा को स्वर्ग में शान्त मिलेगी!''

''सच!'' सुभागी के ओंठो पर मुस्कराहट दौड़ गयी, ''मेरी माँ को स्वर्ग मिला होगा?''

''हाँ, जरूर मिला होगा,'' रामानन्द ने भोली सुभागी को समझाते हुए कहा, ''रामायण में लिखा हुआ है कि मरते समय जिसके मुँह से एक बार भी राम शब्द का उच्चारण हो जाये, उसे बैकुन्ठ मिलता है। और जमुना तो मरते समय राम–राम की ही रट लगाए हुए थी।''

''सच, राम कसम?'' सुभागी प्रसन्नता से हँसने लगी और साथ ही साथ उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

''तुम कितना आँसू बहाती हो सुभागी,'' रामानन्द अपने अँगोछे से सुभागी के आँसू पोंछने लगा, ''तुम रोती हो तब भी तुम्हारी आँखों से आँसू बहते हैं, और जब तुम हँसती हो तब भी अजीब हालत है तुम्हारी!''

आँगन से उसी समय दादी की पुकार आयी और वे दोनों कमरे से निकलकर आँगन में चले आए। दिन ढल चुका था। आधे आँगन में धूप थी और आधे आँगन में खपरैल की छाया की नमी उतर आयी थी। दादी उसी छाया में खटोले पर बैठी हुई चावल में से उरद अलग कर रही थी।

कमरे से बाहर निकल कर सुभागी आँगन के पावे के सहारे खड़ी थी। रामानन्द दादह के बिल्कुल पास बैठा था।

''क्या है रे दादी?'' रामानन्द ने पूछा।

''है क्या?'' दादी ने अधिकारपूर्ण शब्दों में कहा, ''बैसाख से आज कार्तिक– सात छः महीने बीत गए, हमारी दुल्हन बेटी घर से बाहर नहीं निकली!– बेचारी की तबियत न उकताती होगी, अभी बच्ची ही तो है!''

''तो बता मैं फिर क्या करूँ?'' रामानन्द ने दादी से पूछा, ''मैं इसे भी खेत–बारी में ले जाऊँ दादी!''

रामानन्द सुभागी को देखकर मुस्करा पड़ा और वह शरमा गयी।

दादी ने बिगड़ते हुए कहा, ''नहीं रे ऐसी ऐसी बात! खबरदार जो मेरी दुल्हन बेटी को तूने घर से निकालकर उसे खेती–बारी का मूँह देखने दिया! यह घर की लक्ष्मी है! समझा न?''

''समझा दादी!''

''मैं यह कह रही थी,'' दादी ने सामने की परात को बायीं ओर टालते हुए कहा, ''कि परसों सागरा का मेला है। मेरी दुल्हन बेटी को यह मेला जरूर दिखा लाओ। घर पर मैं रहूँगी– सब प्रबन्ध देख लूँगी। तुम लोग सागरा के मेले में जरूर जाओ। मैनी बाबा के सगरे में स्नान करना। दुल्हन को सीताकुण्ड दिखाना.....!''

''कैसा सीताकुण्ड दादी?' सुभागी ने पास आते हुए पूछा और वह स्वयं बैठ कर परात के चावल से उरद अलग करने लगी।

''तू सीताकुण्ड नहीं जानती'? दादी ने आश्चर्य कर, स्वयं उत्तर दिया, ''लव–कुश'' काण्ड में बेटी! जब राम ने अपने पुत्र लव–कुश को पहचाना फिर वे सीता जी के पास गये और उन्हें अयोध्या चलने की उन्होंने प्रार्थना की। लेकिन बेटी! तुझे मालूम ही होगा, सीता धरती की पुत्री थीं। अब धरती नहीं चाहती थी कि उसकी बेटी इस संसार में ठोकर खाए। फिर क्रूा हुआ कि धरती माता का सीना फट गया और सीता समा गसीं। और उसी जगह अब कुण्ड हो गया, जिसे ''सीताकुण्ड'' कहते हैं।''

''मैंने सुना है दादी, कि सागरा के पंडों ने इस कहानी के आधार पर उसे झूठ–मूठ में ''सीताकुंड'' का नाम दे दिया है।'' रामानन्द ने दादी की बात काटते हुए कहा, ''असली सीताकुंड तो दादी मेरे विचार से कहीं गंगा के किनारे उस घने वन में होगा जहाँ मुनि का आश्रम रहा होगा और जहाँ बनवासी सीता रही होगी!''

''तू क्या बकता रे!'' दादी ने अपने विश्वास पर बल देते हुए कहा, ''मैं झूठ कहती हूँ? सीता वहीं सागरा में धँसी थीं, और वही सीता कुंड है।''

''हाँ, दुल्हन को सीताकुंड दिखाना,'' दादी ने अपनी पिछली बात का सिलसिला आगे बढ़ाते हुए कहा,'' ''दुल्हन बेटी को फिर झडुल्ले बाबा की कुटी पर ले जाना। कुटी की परिक्रमा कराना और बाबा से साफ–साफ कह देना, सरमाना नहीं, कि बाबा! सात महीने हो गए, मेरी दुल्हन की गोद खाली है ..... ।''

सुभागी शरमाकर वहाँ से भाग निकली। रामानन्द हँसने लगा लेकिन दादी अपनी बात पूरी करने में लगी थी, ''बाबा से भभूत ले लेना और मेला घूम–देखकर शाम होते–होते घर लौट आना, हाँ..... ।''

सिकन्दरपुर के क्षेत्र में सागरा का मेला सबसे बड़ा मेला था। तीस–तीस कोस के यात्री–लोग उसे देखने के लिए, उसमें भाग लेने के लिए आते थे। रामनगर, हरेंया, टाँडा, लालगंज, बस्ती, फैजाबाद और गोंडा तक की दुकानें उसमें आती थीं। खाने–पीने, खेल–तमाशे और गहना–गुरिया, कपड़े–लत्ते की दुकानों के अतिरिक्त उस मेले में एक ओर जानवर बिकने के लिए आते थे– बैल–गाय और ऊँट। दूसरी ओर उसमें लकड़ी के बहुत कीमती और उम्दा सामान बिकने आते थे, जैसे– बैलगाड़ी के चक्के, हरसे, जुए। खेती के सामान में जैसे– हल–हैंगा, जुआठा और हरस बगैरह और घर बनबाने के सामान में जैसे– बड़ी–बड़ी सागौन की बल्लियाँ, शीशम के पटरे, माहू–आम–नीम की तड़के, शालू की उम्दा–उम्दा शहतीरें और दो सौ रूपये से लेकर एक हजार रूपये तक के शीशम–शाखू–सागौन की शाल के दरवाजे।

मेले में कई अखाड़े होते थें, जहाँ पहलवानों की वर्षों की बदी हुई कुश्तियाँ होती थीं। रोंगटे खड़े कर देने वाली भेड़ों की लड़ाइयाँ होती थीं!

इस तरह सागरा का मेला एक सप्ताह तक चलता था और उसके प्रबन्ध में जिले के एस0पी0, कोतवाल और कई थाने वहाँ आकर अपने डेरे लगाते थे।

सिकन्दरपुर की कई बैलगाड़ियाँ सागरा के मेले आयी थीं, लेकिन सुभागी की बैलगाड़ी रात के चार घंटे तड़के चलकर पौ फटते–फटते सागरा पहुँच गयी।

सुभागी ने अब तक अपने जीवन में इतना बड़ा मेला नहीं देखा था। वह रामानन्द के साथ सबसे पहले मौनी बाबा के सगरे पर गयी। गाँठ जोर कर उन दोनों ने सगरे में स्नान किया। बीस आने पैसे और एक सीधा छूकर उन्होंने मौनी बाबा के मन्दिर पर चढ़ाया। गाँठ जोड़ कर उन दोनों ने सात बार मन्दिर की परिक्रमा की। अंतिम परिक्रमा समाप्त

करके सुभागी ने मन्दिर की देहरी पर अपना सर टेकते हुए मन ही मन प्रार्थना की .....''हे ईश्वर! जब तक सूरज और चांद रहे तब तक मेरा सुहाग अमर रहें।''

सुभागी की आँखों में फिर आंसू उमड़ पड़े। जिसे देखकर रामानन्द मुस्करा पड़ा, ''यहाँ आँसू की क्या बात आ गयी?'' इसके उत्तर में सुभागी हँस पड़ी और वह रामानन्द के साथ मन्दिर की सीढ़ियों से उतरती हुई मेले में चली आयी।

मेले को पार करके सीताकुंड पहुँचने का रास्ता था। सुभागी रेशमी साड़ी के ऊपर पीले रंग की एक मोटी चादर ओड़े थी। उसी चादर को ओड़ कर, उसी के घूँघट में वह डोले से उतरी थी। मेले में चलते हुए सुभागी से वह चादर संभालते न बनती थी। बार–बार उसके सर से चादर कंधे पर आ जाती थी और लोग उसे घूर–घूर कर देखने लगते थे। फिर उसे बड़ी झुंढलाहट होती थी और वह तुरन्त बढ़कर रामानन्द का हाथ पकड़ लेती थी।

पूरे एक घंटे में सुभागी मेले को किसी तरह पार करके ''सीताकुंड'' आयी। यहाँ भी बड़ी भीड़ मुख्यतः औरतों की ही थी, अतएव उसे यहाँ बड़ी शान्ति मिली।

सीताकुंड पक्की ईंटों का बना हुआ एक गहरे से कुंड के रूप में था। उसमें पानी कम, कीचड़ बहुत था, ऊपर से कुंड में उतरने के लिए केवल एक ओर से चौड़ी सीढ़ी थी। मेले के प्रबन्धकों ने सीढ़ी के बीचो–बीच ऊपर से नीचे तक दो मोटी–मोटी रस्सियाँ बाँध रखी थीं। एक ओर से औरतें उतरती थीं और दूसरी ओर से ऊपर वापस लौटती थीं।

इसमें मुख्यतः औरतें दर्शन करने के लिए औश्र कुंड की धरती छूने के लिए जाती थीं और पुरूष केवल वे जा सकते थे जो अपनी पत्नी के साथ हों।

रामानन्द सुभागी को दाएँ हाथ से सम्हाले, ऊपर से कुंड में उतरने लगा। उस उतराई में सुभागी की चादर उसे और कष्ट देने लगी। रामानन्द ने उसकी चादर उतार कर अपने कंधे पर रख ली और वे दोनों कुंड में उतर गए। दोनों ने कुंड की धरती को हाथ से छूकर उसे अपने माथे पर लगाया। सुभागी ने अपने मन ही मन कहा ''हे सीता जी! मेरा पतिव्रत भी इसी तरह अमर रहे। वे सदा जीवित रहें और मैं उनके सामने उनके देखते–देखते इस धरती में खो जाऊँ।''

रामानन्द ने कोतुहल–वश सुभागी की आँखों में देखा। इस बार उसे उसकी आँखों में आँसू न मिला, ल्कि एक ऐसा प्रकाश मिला जैसे अग्नि का प्रकाश होता हो।

सीताकुंड से ऊपर आकर सुभागी ने फिर अपनी चादर ओढ़ ली और उसने अपने मुख पर हल्का–सा घूँघट बना लिया जिससे कोई उसकी आँखों को न देख सके। सुभागी को इसका बहुत ख्याल था।

सीताकुंड के दर्शन के बाद रामानन्द ने हँसते हुए सुभागी के सामने झडुल्ले बाबा की कुटी के दर्शन का प्रस्ताव रखा। सुभागी इस प्रस्ताव पर बच्चों की तरह शरमाती रही और उसके पैर आगे बढ़ने से और भी लज्जा और संकोच से सहम रहे थे। वह आगे बिल्कुल न बढ़ती थी, बस हँसती थी, मुस्कराती थी और शरमा जाती थी। यहाँ तक कि उसका पूरा मूँह लज्जा के भार से गुलाबी हो गया। वह हाँ–नहीं कुछ करती ही न थी।

रामानन्द भी संकोच में पड़कर उधर न जा सका और वह सुभागी के साथ मेले की ओर बढ़ गया।

मेले में सुभागी रामानन्द के साथ पूरे चार घंटों तक घूमती रही। भीड़ में जहाँ कहीं भी सिकन्दरपुर का कोई पुरूष रामानन्द के सामने से गुजरने लगता था या उसके सामने आ जाता, वह तत्काल सुभागी को अपने पीछे छिपा लेता। लेकिन जहाँ कहीं सिकन्दरपुर की कोई लड़की या औरत उनसे मिलती, रामानन्द सुभागी को पूरी छूट दे देता कि वह उनसे मिले और मेले का आनन्द ले।

सुभागी को मेले भर में दो चाजें बहुत पसन्द आती थीं– मिट्टी के खिलौने और रंग–बिरंगी माला, फूलों और मोतियों से गुंथे हुए सर के गहने और सुहाग की पक्की टिकुलिया। इन चीजों को सुभागी ने इतना खरीदा था कि उसका आँचल भर गया था।

चार घंटे दिन शेष रह गया था, उस समय रामानन्द की बैलगाड़ी सागरा के मेले से घर के लिए रवाना होने लगी। इस बार सुभागी ने सिकन्दरपुर की उन चार औरतों को भी अपने साथ बैलगाड़ी पर बिठा लिया, जो मेले में गाँव से पैदल चलकर आई थीं, और पैदल जा रही थीं। वे चार औरतें थीं, विद्या की माँ तथा केशर की माँ और केशर।

विद्या–केशर सुभागी की 'सखी भाभी' कहती थीं और सुभागी उनकी माँ को दिवान जी कहती थी।

बैलगाड़ी पीछे की ओर पर्दे से ढकी थी और पर्दे के बाहर बिल्कुल आगे, खेलावन रामानन्द का हलवाहा बैठा हुआ गाड़ी हाँक रहा था और उसके पीछे पर्दे से सट कर रामानन्द बैठा था। पर्दे में औरतें बैठी थीं।

खेलावन रामानन्द से मेले की घटनाएँ बता रहा था। सूरजपुर और तेनुवाँ के ठाकुरों में बड़ी तेज लाठी चल गयी थी। तेनुवाँ के ठाकुर महीपति सिंह ने सूरजपुर की एक चमारिन को आज दो वर्ष हुए अपने घर बैठा लिया था

और इस मेले में वे उसे लेकर यहाँ आए थे। सूरजपुर वालों ने उन्हें देख लिया। महीपति सिंह अपनी चमारिन के लिए एक पटहार की दुकान पर गहना खरीद रहे थे और सुरिया उसके पास खड़ी–खड़ी पान का बीड़ा चबा रही थी। इतने में सूरजपुर वालों ने सुरिया चमारिन को पकड़ लिया। सुरयिा चिल्लायी और उधर तेनुवाँ के ठाकुरों को भी पता चला और दोनों गाँवों में जमकर लाठी चली। कितने घायल हुए लेकिन तेनुवाँ वालों ने सुरिया को अपने हाथ से न जाने दिया।

खेलावन यह भी बता रहा था कितने अखाड़ों पर, कौन–कौन से पहलवान पटके गए और उन पर कितनी जगह लाठियाँ चलीं। भेड़ों की लड़ाई में कितनों के सींग टूटी, खेलावन के पास सुन–सुनाकर इन सबका ब्यौरा था।

दुल्लेपुर के एक कुरमी ने पाँच सौ रूपये लेकर अपनी बड़ी लड़की की शादी दौहट के चौधरी के यहाँ की थी। गौने के बाद दुल्लेपुर वाला उसको अपने घर लिवा लाया और ढाई वर्ष हो गये उसने अपनी बेटी को चौधरी के घर विदा ही नहीं की। इस मेले में दौहट के चौधरी ने लड़की को जबरदस्ती अपनी गाड़ी पर बैठा लिया और दुल्हेपुर वाला अपना सर पीटता ही रह गया।

खेलावन गाड़ी हाँकता हुआ रामानन्द को मेले की खास–खास घटनाओं को ब्यौरा दे रहा था। और गाड़ी के पर्दे के भीतर सुभागी, औरतों के साथ गा रही थी। बैलगाड़ी सागरा के मेले से सिकन्दरपुर के रास्ते पर चली जा रही थीं। दिन डूबने में केवल एक घंटा दिन शेष था।

रामानन्द दो विभिन्न दुनियाँ के बीच में बैठा चल रहा था। उसके सामने खेलावन बैठा था। वह यथार्थ दुनिया की तस्वीरें रख रहा था। गाँव की नंगी स्थितियों की वह चर्चा करता जा रहा था। और रामानन्द के पीछे उसकी दुल्हन सुभागी की सपनों भरी दुनियाँ थी, जहाँ वह अपने गीतों के संगीत भरे पंख पर उो बिठाकर एक ऐसी अनोखी दुनिया में ले जा रही थी, जहाँ गीत है, शान्ति है, स्नेह है और जीवन में कर्त्तव्य–रत होने की अद्‌भुत प्रेरणा है।

संध्या होते–होते रामानन्द की बैलगाड़ी सिकन्दरपुर पहुँची। संध्या से लेकर दो घंटे रात तक, गाँव के प्रायः सब लोग सागरा के मेले से लौट आए और उस समय से एक अजीब–सी खबर गाँव में धुँए की तरह धीरे–धीरे फैलने लगी।

बैजू सिंह ने बड़े लड़के किरपाल ने मेले में भगवन्ती को दो रूपया नगद दिया था और उसने भगवन्ती को भर–बाँह की चूड़ियाँ भी पहनायी थीं तभी वह अपने पति रामलाल को घर पर ही छोड़कर अकेले सागरा के मेले में गयी थी। लोगों ने देखा था कि वह मेले भर में किरपाल के साथ टहल रही थी।

पूरा गाँव मेले से लौटकर किरपाल और भगवन्ती की चर्चा कर रहा था और उधर रामपाल भगवन्ती को कमरे में बंद करके उसे जूतों से मार रहा था। उसके दोनों हाथों की चूड़ियाँ फूट गयी थीं। उसकी कलाईयों से खून बह रहा था। रामलाल की निर्मम मार से वह अपने घर में बंद इस तरह तड़प रही थी, जैसे कसाई के कठघरे में बौ चिंग्घार रही हो।

काफी रात बीत चुकी थी। घायल भगवन्ती अब भी बिना अन्न–पानी के कमरे में बंद, रो रही थी। सुभागी ने रामानन्द को विवश करके रामलाल के घर भेजा। जिस समय वह रामलाल के दरवाजे पर पहुँचा, उस समय रामलाल भोजन करके खाट पर बैठा हुआ कच्ची सुरती बना रहा था और अपने आप, बैजूसिंह और किरपाल को गालियाँ सुनाता जा रहा था।

रामानन्द ने पास पहुँच कर अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहा, ''काका! जो हुआ उसे क्षमा करो!''

''क्षमा करूँ!'' रामलाल ने गंभीरता से कहा, ''किसे क्षमा करूँ?''

''काकी का।''

''तुम्हारी तरह मुझे अपनी नाक नहीं कटानी है रामानन्द!'' रामलाल ने बरसते हुए कहा,''मुझे अपनी कुल मर्यादा की चिन्ता है! तुम्हारी औरत एक कलमुही विधवा की लड़की है, तुम उसे लेकर दुनियाँ में घुमाओ–फिराओ, खूब नचाओ। लेकिन मेरी स्त्री..... उसकी एक–एक बोटी काट करके मैं उसे धरती में गाड़ दूँगा। बैजूसिंह से अपनी जान की बाजी लगा दूंगा लेकिन अपनी कुल–मर्यादा पर आँच तक नहीं आने दूँगा।''

रामानन्द के पास कोई शब्द न था। वह चुप था। उसे लग रहा था, जैसे, रामलाल काका ने उसे अनायास एक ऐसे चाबुक से मारा हो जो उसके सर से पैर एकाएक जला गया हो।

वह चुपचाप अपने घर लौट आया।

रात भर रामानन्द और सुभागी को नींद न आयी। वे दोनों आगते रहे और मागवन्ती सारी रात अपने घर में बन्द रोती रही।

उसी सप्ताह के अन्त में भगवन्ती एकाएक घर से गायब हो गई। रामलाल रोता हुआ उसे ढूंड़ता रहा और एक दिन गाँव के चरवाहों में नाग बाबा के कुएँ में देखा, भगवन्ती की लाश फूल कर पानी पर तैर रही थी।

सुभागी और रामानन्द की गृहस्थी इतनी शान्त और सुखी थी कि पूरा सिकन्दरपुर उनसे स्पर्धा करता था। सुभागी अपने रामानन्द की पति के ही रूप में ही नहीं देखती थी, वरन वह अपनी सारी अनुभूतियों से उसे ईश्वर के रूप में पाती थी। उसकी माँ जमुना ने ईश्वर और भक्त के सम्बन्धों को लेकर उसे कितनी कथाएँ बतायी थीं। सुभागी ने स्वयं रामायण, सुखसागर और प्रेमसागर आदि ग्रन्थों में ईश्वर की महानता–उदारता की कथाएँ पड़ी थीं। ईश्वर अपने भक्तों को स्नेह–उद्धार के लिए कितने अवतार लता है। रामानन्द के व्यक्तित्व में सुभागी ईश्वर के इन्हीं तत्वों को पाती थी। वह अब तक कभी–कभी अपनी स्थितियों को लेकर चिन्तन करने लगती थी कि अगर रामानन्द न होता तो उसे कौन कुलीन ब्राह्मण अपनी पत्नी बनाता? पुरैना वालों ने तो यह सिद्ध ही कर दिया था कि सुभागी कलमुँही विधवा ब्राह्मणी जमुना की पापी संन्तान है। अगर रामानन्द ने उसका उद्धार न किया हो, तो उसकी अकेली विधवा माँ क्या करती? वह रो–पीट कर मर जाती और सुभागी सदा के लिए एक ऐसे रास्ते पर अकेली छूट जाती जिस के आगे कोई रास्ता न था, चारों ओर कुएँ थे, गड्ढे थे और ऊँचे'–ऊँचे सरजू नदी के कगार थे।

सुभागी अब भी जब, अपने जीवन के उस कारूणिक अतीत को सोचती तो वह सर से पैर तक काँप जाती, फिर वह डरे हुए बच्चे की भाँति दौड़ी हुई रामानन्द के पास जाती और उसके अंक से चिपक जाती। रामानन्द हँसने लगता। स्नेह से वह सुभागी के माथे पर अपना हाथ फेरने लगता और सुभागी अपने को छिपाती हुई कहती–''देखो, मुझे अकेली छोड़ कर कहीं मत जाना।''

रामानन्द और फूट कर हँस पड़ता। लेकिन सुभागी उसके अंक में अपने मुँह को छिपाए कहती रहती, ''मुझे अकेले सच, डर लगता है, घर में अभी और खिड़की पर भी।''

रामानन्द मजाक करता, ''सिकन्दरपुर कोई पुरैना गाँव थोड़े ही है!'' सुभागी तुरन्त उत्तर देती, ''सब गाँव एक ही तरह के होते हैं। किसी को सुखी देखकर वहाँ के भी लोग जलते थे, यहाँ भी लोग जलते हैं। वहाँ भी लोग अपनी औरतों को कसाई की तरह मारते थे। थोड़ी सी गलती पर उन्हें कुआँ–इनार ताकना पड़ता था, ठीक यही हालत यहाँ भी तो हैं।''

सुभागी के इन उलाहनों और दुश्चिन्ताओं का रामानन्द के पास कोई उत्तर न था। वह सुभागी को देखता हुआ बस मुस्कराता और धीरे–धीरे वह उदास हो जाता, तब सुभागी उसे प्रसन्न देखने के लिए हँसने लगती और उसके दाएँ हाथ को अपनी दोनों हथेलियों में कस लेती और अत्यन्त स्फुट–स्वर में कहने लगती– ''तुम तो मेरे राम हो! मेरे तो तुम ईश्वर हो!''

पूस की ठंडी रात थी और उसका पिछला पहर शीत–कुहरे और पाजे से इतना भर रहा था कि कहीं हाथ पसारे न सूझता था। गेहूँ–मटर की फसल पूरे उभार पर थी और दोनों फसलों पर पाला मारने का डर सब किसानों को लगा रहता था। इससे खेती की रक्षा का केवल यही उपाय था कि दोनों फसलों की खूब सिचाई हो और धरती की नमी कभी कम न होने पाए।

कुएँ पर पानी बाँधने का समय होते–होते एकाएक रामानन्द की आँखें खुल गयी। वह राम–राम कहते हुए उठा और चुपके से दरवाजा खोलकर बाहर जाने लगा। लेकिन सुभागी जग गयी। वह भी जल्दी से उठकर रामानन्द के पास चली आयी। सुभागी को मालूम था कि उसके हलवाहे हंसराज की तबियत खराब है इसलिए कुएँ पर पानी बाँधने के लिए रामानन्द को जाना होगा। पूस की इतनी काँपती हुई रात के भोर में अकेले रामानन्द कुएँ पर पानी बाँधने जाय और सुभागी अकेले कमरे में गर्म लिहाफ में सोए, उससे यह नहीं हो सकता था। अतएव वह आग्रह करके रामानन्द के साथ चली।

रामानन्द ने अपने कंधे पर कूड़ और बरेत (रस्सी) रक्खा, सुभागी ने अलाव का समान लिया और दोनों घर के बाहर निकले।

बेतरह कुहरा पड़ रहा था। पेड़–पौधों से शीत की नन्ही–नन्ही बूंदे टपक रही थीं और भोर का सारा वातावरण शान्त–निस्तब्ध था। लेकिन बीच–बीच में कभी–कभी ठंडक की मारी हुई लोमड़ी अपनी ''खो–खो–खो'' की पुकार से समूची निस्तब्धता को इस तरह भंग कर देती थी जैसे– अंधकार की शान्ति में कोई रह–रह कर कराह रहा हो।

पूरब के डाँड़े–कुए पर पहुँच कर सुभागी ने अलाव जलाया और रामानन्द पानी चलाने लगा।

''आओ अलाव के पास थोड़ी देर तक हाथ सेंक लो'', सुभागी ने कुछ क्षणों के बाद आग्रह किया, ''हाथ गर्म हो जाए, फिर पानी चलाना।''

कुएँ का चलाया हुआ पानी जब नाली से खेत की ओर बहने लगा, रामानन्द तब कुएँ की जगत् से उतर कर अलाव के पास आया और आग के सामने अपनी देह सेंकने लगा।

दूर की बोलती हुई लोमड़ी एकाएक पास अरहर के खेत में बोल उठी–''खो–खो–खो–खो।''

सुभागी ने पूछा, ''लोमड़ी जैसे, रो रही है क्या?''

''उसे शीत और पाला मार रहा है!''

''तो वह और जानवरों की तरह मांद में क्यों नहीं छिपकर बैठ जाती'', सुभागी ने कहा, और उत्सुकता से वह रामानन्द का मुँह देखने लगी।

रामानन्द ने बताया, ''रात को वह अपनी मांद ढूँढ नहीं पाती, इसीलिए वह रात भर अपनी मांद ढूढँती फिरती है कि –''खो–खो–खो–खो', यानी मेरी माँद खो गयी ..... खो गयी।''

कुछ क्षणों के बाद रामानन्द कुएँ से फिर पानी चलाने लगा और इधर धीरे–धीरे सुबह होने लगी।

रामानन्द ने सुभागी से कहा, ''चलों, अब तुम्हें मैं घर छोड़ जाऊँ नहीं तो तुम्हें कोई देख लेगा।''

सुभागी हँसने लगी, ''कोई देख कर क्या करेगा?''

''बदनामी होगी!'' रामानन्द ने कुएँ से नीचे उतरते हुए कहा।

''बदनामी किसे कहते हैं!'' सुभागी ने मुस्कराते हुए कहा, ''तुम कुएँ पर पानी चलाओ और मैं खेत में पानी संभालूँ! घर में अकेली बैठी क्या करूँगी?''

रामानन्द सुभागी को अपनी बाँह में समेट कर कुएँ से गाँव की ओर बढ़ने लगा। आसमान से धरती के बीच, चारों ओर शीत और कुहासा भरा था। पेड़–पौधे, बड़े–बड़े वृक्ष तक उसमें खो गये थे।

थोड़ी देर के उपरान्त जब रामानन्द दौड़ता हुआ कुएँ पर वापस लौटा, उसने देखा, नाली में पानी सूख चुका था। वह बहुत तेजी से पानी खींचने लगा, और थोड़ी ही देर में उसने नाली को पानी से लबालब भर दिया।

सूरज की किरनें फूट आयी। रामानन्द को अकेले कुएँ पर पानी चलाते हुए पक्के दो घंटे बीत गए। वह बार–बार गाँव की ओर रास्ता देख रहा था और कभी–कभी कुएँ पर से पुकारने लगता–''खेलावन हया ही! ऐ खेलावन!!''

रामानन्द की यह पुकार कुएँ से गाँव में आती और इसका स्वर सब से पहले सुभागी के कानों में टकराता और वह बेचैन हो रही थी कि अब तक खेलावन कुएँ पर नहीं पहुँचा और वे अकेले कुएँ पर पानी चला रहे हैं।

सुभागी ने आग्रह करके दादी को खेलावन के घर भेजा। खेलावन सर–दर्द का बहाना बना कर अलाव के पास बैठा था और उसने कुएँ पर पानी चलाने से बिल्कुल इन्कार कर दिया।

दादी निराश कुएँ पर पहुँचीं और उसने खेलावन के न आने की सूचना दी।

रामानन्द हतोत्साहित न हुआ। खेत में पानी संभालने के लिए पल्टू आ गया था। उसने तय किया कि आज वह डाँड के कुएँ पर दिन भर अकेला पानी चलाएगा और खेलावन को ब अपनी हलवाही से निकाल देगा। दादी हठ कर रही थीं कि पानी तोड़ दिया जाय, दूसरे दिन खेत सींच लिया जायेगा। लेकिन रामानन्द की दृष्टि में यह संभव न था, क्योंकि उस कुएँ पर पानी लेने की बारी अब देर में आयेगी और तब तक मटर की जवान फसल को निश्चित रूप से पाला मार जायेगा।

पहर भर दिन चढ़ आया। रामानन्द अकेले कुएँ पर पानी चलाता रहा। सुभागी नाश्ता तैयार करके अपना सर धुन रही थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह घर से निकल कर डाँड़े के कुएँ पर जाय, रामानन्द को नाश्ता कराए और स्वयं पानी चलाने लगे।

दादी नाश्ता लेकर कुएँ पर गयी। रामानन्द ने नाश्ता किया और वह फिर पानी चलाने लगा। दादी ने सलाह दी कि क्यों न वह एक मजदूर कर ले। थोड़ी मजदूरी ज्यादा देनी पड़ेगी तो क्या? लेकिन रामानन्द इस बात को सिद्ध करके दिखा देने पर तुला था कि उसमें इतना पुरूषार्थ है कि हलवाहों के धोखा देने पर भी किसी कुएँ पर लिया हुआ पानी कभी टूट नहीं सकता।

सुभागी ने लखिया चमारिन को बुलाया उसे चुपके से उसने एक रूपया दिया और कहा कि वह जल्दी से अपने पति भगेलू को डाँडे के कुएँ पर भेजे।

भगलू जब कुएँ पर रामानन्द को छुड़ाने गया, उस समय पाँच घंटे से ज्यादा दिन बीत गया था। भगेलू ने बहुत समझाया, प्रार्थना की, खेलावन की तरफ से उसने माफी माँगी, तब रामानन्द ने उसे पानी चलाने दिया।

पानी चलाते हुए भगेलू ने रामानन्द से कहा, ''भइया! जाओ खाना खाकर आराम करके तब कुएँ पर आना, तब तक मैं अपना जोआ (पारी) पानी चलाता रहूँगा!''

रामानन्द जब घर लौटा, उस समय सुभागी दोपहर का खाना बनाकर दरवाजे पर खड़ी–खड़ी बाट जोह रही थी। रामानन्द को पाकर वह प्रसन्नता से आँगन में मुढ़ी। आँगन में उसके हाथ–पैर धुलाते हुए उसने देखा रामानन्द की दोनों हथेलियाँ बिल्कुल सुर्ख हो आयी थीं। सुभागी अपने मन मे ंही तड़प कर रह गयी।

खाना खाकर रामानन्द ने आराम किया। वह सीधे कुएँ पर जाने लगा और सुभागी निःसहाय दरवाजे पर खड़ी उसे देखती रह गयी।

एक घंटा रात बीतते–बीतते पूरा खेत सिचकर समाप्त हुआ, फिर रामानन्द कूँड–बरेत लिए घर वापस आया। वह बेतरह थक गया था, लेकिन वह बहुत खुश भी था। उसका पूरा खेत सिंच गा, इससे अधिक खुशी उस इस बात की थी कि उसने अपने पुरूषार्थ को देख लिया।

खेलावन दूसरे दिन भी काम पर न आया और रामानन्द उसे बुलाने भी न गया, बल्कि उसने मन–ही–मन में यह तय किया कि वह उसे हलवाही से निकाल देगा।

कुदार और हँसिया लेकर सुबह ही वह ऊख के खेत में गया और एक बोझ ऊख उसने काट गिरायह। चार घंटे दिन चढ़ते–चढ़ते उसने सारी ऊख छील डाली। एक बोझ गन्ना निकला और दो बोझ उसके गेंड़ निकले। दो बार में उसने दोनों चीजों को यथास्थान ला गिराया। गन्ने को दातादीन बाबा के कोल्हू पर रक्खा और गेंड़ को अपने नेसुहे पर।

गन्ने से रस पेरने के बाद रामानन्द ने थोड़ा–सा खाना खाया और शेष गन्ने का ताजा रस पिया और थोड़ी देर के बाद वह गेंड काटने के लिए नेसुहे पर बैठ गया और अनबरत दो घंटे तक नेसुहे पर गेंड़ासा चलाता रहा।

चारा काटने के बाद उसने बैलों की नाद में पानी भरा और उसमें सानी बोझकर उसने बैलों को लगा दिया।

हाथ–पैर–मूँह धोने के बाद रामानन्द दरवाजे की खाट पर बैठा। दिन काफी ढल चुका था, मुश्किल से तीन घण्टे दिन शेष थे। पूस महीने की हल्की धूप में वह थकान मिटाने लगा। वह थोड़ी देर के बाद खाट पर लेट गया और सुभागी दरवाजे पर खड़ी–खड़ी उसे देखने लगी।

रामानन्द वहीं से सर उठाकर सुभागी को देखता, मुस्करा देता लेकिन वह कुछ उत्तर न दे रहा था। वह थका–थका सा वहीं लेटा रहा और थोड़ी देर के बाद वह जैसे, वहीं सो गया।

सुभागी ने अपने सर के आँचल को थोड़ा सा आगे खींचकर अपने मुंह पर हल्का सा घूंघट बना लिया और बहुत तेजी से वह रामानन्द के पास चली आयी।

रामानन्द ने आँखें खोल दीं। सुभागी ने देखा उनकी आँखें लाल हो रही थीं। धूप में भी उसके रोंगटे खड़े थे।

सुभागी को देखते ही रामानन्द ने थके स्वर में कहा, ''मुझे जूड़ी आने वाली है।''

यह कहकर रामानन्द खाट से उठा और घर में जाने लगा। सुभागी हतप्रभ हो रही थीं। उसके मूँह से कोई शब्द न निकला। वह रामानन्द के साथ लगी हुई भीतर कमरे में आयी।

पलँग पर लेटते ही रामानन्द की जूड़ी एकदम बढ़ गयी। सुभागी ने उसे तीन लिहाफ दो कम्बल और चद्दर आढ़ा दी, लेकिन उसकी कँपकँपी और शरीर का ज्वर कम नहीं हो रहा था। इतने बजनी और गर्म ओढ़ने से दबा हुआ रामानन्द जाड़े से इस तरह गड़गड़ा रहा था, जैसे, वह वर्फ पर नंगा सोया हो। सुभागी ने फिर अपने हाथ और सीने के दबाव से रामानन्द को ढक लिया। और उसे बहुत देर तक अपने अंक से दबाए, वह आतंकित, लेकिन निश्चेष्ट स्वर से धीरे–धीरे रा...राम.....राम कहने लगी।

कुछ क्षणों के बाद रामानन्द की जूड़ी का तूफान थम गया। लेकिन उसके साथ ही ज्वर के अतने तेज तूफान ने उसको अपने में ढक लिया, जैसे, समुद्र के उठते हुए ज्वार से उसके कगार का कोई छोटा–सा पौधा ढक गया हो। ज्वार के गर्भ में डूबा हुआ, भीतर ही भीतर वह पौधा अकुला रहा हो, उसकी साँसें टूट रही हों और उसका सर फट रहा हो, ठीक यही दशा रामानन्द की हो रही थी।

थोड़ा दिन शेष रह गया था। फिर सुभागी ने उस कमी में दिया जलर दिया। रामानन्द बुखार से बेहोश पड़ा था। अब उसके ऊपर केवल एक लिहाफ थी, जिसे भी वह कभी–कभी अपने ऊपर से अलग हटाने लगता था। लेकिन उसके सर में इतनी पीड़ा हो रही थी, जिससे वह पूर्ण निःशक्त हो रहा था।

सुभागी सरहाने बैठी हुई रामानन्द के सर को तेल से दबा रही थी और अपनी सुपट वाणी में वह अनवरत राम–राम कहती जा रही थी।

उस समय तक दादी डँड़वा कुएँ के जोगीवीर बाबा को एक चिलम गाँजा चढ़ा चुकी थी और काली माई और डिवहार गोसाँई की पूजा मान चुकी थी।

राम भर सुभागी रामानन्द के सरहाने बैठी रही। सुबह भोर में जब केवल एक घण्टा शेष रह गया, सुभागी ने देखा, रामानन्द बेखबर सो रहा था। फिर सुभागी को थोड़ी–सी सुस्ती और थकान का अनुभव हुआ। वह वहीं रामानन्द के सरहाने जमीन पर बैठी–बैठी पलँग से अपने दोनों हाथ और सर को टेककर झपकी लेने लगी और क्षणमात्र में ही वह उसी तरह सो गयी।

थोड़ी ही देर के उपरान्त वह स्वप्न में देखने लगी–उसके आँगन में कोई पालकी उतारी गयी है। उसका आँगन गाँव की औरतों से भरा हुआ है, लेकिन कोई गीत नहीं गा रहा है। सभी पालकी में बैठी हुई दुल्हन को देखने के लिए आतुर हैं। लेकिन पालकी का ओहार नहीं हटा रहा है, बस, सब उसकी ओर देख ही रहे हैं। उसी समय आँगन में सफेद वस्त्र पहने पाँच गाती हुई औरतें आती है। और बन्द पालकी के पास जाती हैं। वे पालकी का ओहार हटाती हैं, उसका बन्द दरवाजा खोलती हैं, फिर आँगन में शोर और हँसी फूटने लगती है। पालकी में कोई दुल्हन नहीं है। वह न जाने कहाँ चली गयी। धीरे–धीरे आँगन औरतों से खाली हो जाता है, फिर आँगन में चार कहार आते हैं, उसी क्षण पालकी की दुल्हन, परदे से अपना मूँह निकाल कर आँगन में देखने लगती है।

सभी एकाएक चौंक पड़ी। उसकी आँख खुल गयी और वह जमीन पर गिरते–गिरते बची।

सुबह हो रही थी। उसका दम फूल रहा था। वह आँगन से बरामदे को पार कर खिड़की के पिछवाड़े गयी। भोर हो चुका था लेकिन भोर के प्रकाश को शीत और कुहासे का धुँआ इस तरह दबा रहा था, जैसे दुःस्वप्न की याद सुबह मन के आल्हाद को दबाती जा रही हो।

सुभागी खिड़की से भाग कर दादी के पास आयी और अपने देखे हुए स्वप्न को उससे कहने लगी। दादी ने फौरन सोचा और सुभागी से कीा, यह भगवती माई के लस्कर का सपना है। माई भोर पालकी पर बैठकर मेरे आँगन में आयी थीं, और चली भी गयी। अब सब कुशल–मंगल हो जायेगा।

यह बताकर दादी सुभागी को लेकर देवतन के कमरे में गयी और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी–''हे फूलमती माई! मेरे रामू को अच्छा करो। मेरे आँगन में आज रात को दवी की पालकी पर बैठकर आयी थीं और चली गयी। यह आपकी कृपा है मेरी मइया! मेरा रामू, मेरी दुल्हन बहू फूले–फलें मेरी मइया! ये दोनों हर नौरातन (नौरात्र) को देवीजी को सवा घड़ा धार–लस्कर (मिट्टी के घोड़े–हाथी) चढ़ायेंगे।

तीसरे दिन रामानन्द का बुखार बिल्कुल उतर गया। सुग्गी उस दिन इतनी प्रसन्न हुई कि उसने अत्यन्त स्वस्थ मन से उसी रात, देवीजी को उनका मानता पूरा किया।

रामानन्द ने दोपहर को मूंग की खिचड़ी खायी। घर से निकलकर वह बाहर दरवाजे पर बैठा, बैलों की देख–रेख की और इधर–उधर गाँव में भी टहल आया। रात को उसने दाल–चावल–रोटी सब्जी और अँचार खटाई आदि सब कुछ खाया। रात को उसे बहुत अच्छी नींद भी आयी।

सुभागी ने शान्त मन से साँस लिया कि रामानन्द पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया। दूसरे दिन रामानन्द खेती–बारी का काम करना चाहता था लेकिन सुभागी ने अपने आग्रह से रामानन्द को पूरी तरह से आराम करने के लिए बाध्य कर दिया।

दोपहर का खाना खाकर रामानन्द दरवाजे पर आया और वहीं धूप में खाट पर आराम करने लगा। धूप की किरनें उसे बहुत कोमल लग रही थीं, वह खाट पर बिल्कुल चित लेटा हुआ था। कुछ क्षणों के बाद उसका सर एकाएक भारी होने लगा और धूप की किरनें उसे इस तरह लगने लगी, जैसे बर्फ की नन्हीं–नन्हीं बूँदें उसके ऊपर बरस रही हों और सर से नाखून तक चीटियों के समूह ने उसे घेर लिया हो।

वह खाट से सहसा उठा, बरामदे में गया, कम्बल लिया और उसे ओढ़े हुए वह फिर धूप में लेट गया। लेकिन धूप में और कम्बल के नीचे उसका शरीर ठंठक से काँपने लगा। सब रोंगटे रह–रहकर खड़े हो जाते और उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ फूटने लगी।

वह काँपता हुआ खाट से उठा, घर में गया और बिना किसी को बताए वह कमरे में उसी पलंग पर लेट गया। अपने ऊपर उसने दो लिहाफ और कम्बल ओढ़ लिए और स्वयं वह उतने ओढ़ने के नीचे हाथ पैर सीने सबकी एक में भींचकर हू....हू.....हू.... हू करके काँपने लगा और मन ही मन, राम–राम कहने लगा।

सुभागी ने स्वस्थ मन से खाना खया, और रामानन्द को देखने वह दरवाजे पर गयी। वहाँ खाट खाली थी। उसने थोड़ा सा घूघंट निकाल बरामदे में बढ़कर इधर–उधर देखा, रामानन्द कहीं भी न दिखायी पड़ा। वह बहुत देर तक रामानन्द की प्रतीक्षा में दरवाजे से लगी खड़ी रही, फिर आँगन में लौट आयी। न जाने क्यों रामानन्द को तुरन्त देखने के लिए उसकी तीव्र इच्छा हो रही थी। वह अत्यन्त आलस मन से अनायस अपने कमरे में गयी। आश्चर्य से उसने अपने पलंग पर देखा और उसका माथा ठनका। लिहाफ उसके मूँह पर थोड़ा–सा हटाकर उसने उसके माथे पर अपनी हथेली रक्खी और अनुभव किया कि रामानन्द के शरीर से बुखार की लपट उठ रही थी और वह आँखें मूंदे, जैसे बेहोश मुँह से तेज–तेज साँसे ले रहा था।

सुभागी सर थामे वहीं जमीन पर बैठ गयी। वह सोचने लगी, यह देवीजी का कोप है या मलेरिया है। वह सोचती रही और कुछ क्षणों के बाद उसे लगने लगा, जैसे धरती घूम रहीं हो। और वह बैठी–बैठी जमीन पर गिर पड़ेगी।

वहाँ से वह तुरन्त उठी। आँगन में आयी। दिन काफी ढल चुका था। दादी से उससे रामानन्द की स्थिति बतायी और उदासी से वह दादी का मुँह देखने लगी।

दादी ने बताया कि देवी जी आते–जाते अपना प्रसाद देती हैं और इस के बाद सब आनन्द कर देती है। सुभागी के सामने यह स्पष्ट था कि रामानन्द को मलेरिया है, लेकिन दादी के विश्वास भरे दिमाग के सामने वह कुछ नहीं कह पाती थी।

दो–दो दिन का अन्तर देते हुए रामानन्द के जूडी बुखार को एक महीना हो गया। वह बिल्कुल दुबला हो चला था। जब उसे बुखार का दौरा आता, तब वह खाना–पीना छोडकर पलंग पर पड़ जाता, लेकिन तीसरे दिन जैसे ही बुखार अतरता वह अवश्य खाना खाता और सुभागी न सही तो दादी जरूर खाना खिलाती। अब सुभागी जब दादी के सामने रामानन्द की बीमारी को लेकर रोती, अपने देवतन बाबा और दादी की फूलमती की दुहाई देती, तब दादी कुछ उत्तर न देती, वह चुप रहने लगी थी।

उस दिन बुखार उतरा हुआ था। सुभागी ने रामानन्द को सहारा देते हुए कमरे से आँगन में निकाला। आँगन की धूप में उसे चारपायी पर बिठाया। रामानन्द को भूख लगी थी और वह कुछ खाना–पीनर चाहता था। सुभागी ने स्नान करके रामानन्द का हाथ धुलाया और पाँच सेर अन्न उसके हाथ से छुलाकर वह स्वयं उसे मिसिरी गोसाई को देने के लिए खिड़की के रास्ते उनके घर चली गई।

थोड़ी देर के बाद जब वह लौटी, उसने देखा, दादी सामने बैठी हुई रामानन्द को ढेर–सा चना, चावल का भूजा चबवा रही थी। पास आकर उसने और भी देखा कि भूजे के साथ मूली और खटाई का एक टुकड़ा भी था। सुभागी की आँखों में आँसू भर आये। वह किससे क्या कहे? रामानन्द के सामने से वह कैसे भूजा छीन ले, वह दुश्चिन्ता में खड़ी सोचती रही और उसकी आँखों में आँसू भरते रहे।

रामानन्द ने जैसे ही देखा कि सामने सुभागी डबडबाई हुई आँखों से चुपचाप खड़ी है, उसने भूजा चवाना बन्द कर दिया और दादी वहाँ से अपने आप खिसक गयी।

सुभागी कुछ बोली नहीं। वह सीधे चौके में गयी और शीघ्रता से भोजन तैयार करने लगी।

आँगन भर में धूप फैल चुकी थी। दाल को चूल्हे पर छोड़कर सुभागी आँगन में आयी। वह रामानन्द के शरीर में तेल लगाना चाहती थी, अतएव उसने उसके कपड़े उतारना शुरू किये। कर्ता उतारकर जब वह उसकी बनियाइन उतारने लगी उस क्षण सुभागी ने बहुत नजदीक से रामानन्द की आँखों में देखा। आँखों के कोये पीले पड़ रहे थे, उसे कँवरू हो गया था। सुभागी ने फिर अपने को छिपाते हुए उसकी बनियाइन उतारी और खाट पर एक दम चित सुला दिया। अब सुभागी अपने को रोक न सकी। बरबस उसकी आँखों में आँसू बरसने लगे। रामानन्द का शरीर बिल्कुल पीला पड़ गया था। उसका पेट दुबले शरीर के अनुपात से इस तरह निकल आया था, जैसे, दूध न पाए हुए नन्हें–नन्हें बच्चों के पेट निकल आते हैं।

रामानन्द ने घबड़ायी हुई सुभागी को मुस्कराते हुए समझाया, ''इस में क्या घबड़ाने की बात! फिर मोटा हो जाऊँगा। जूड़ी–बुखार या मलेरिया भी कोई रोग है।''

शरीर में तेल लगाते–लगाते जब सुभागी उसके पेट पर तेल लगाने लगी, उसने अनुभव किया, पसलियों के नीचे वायीं ओर उसे तिल्ली बढ़ आई थी।

रामानन्द को केवल रोटी और सरसों का साग खिलाकर सुभागी अपने घर से सीधे मिसिरी गोसाई के घर गयी और कोई अच्छा वैद्य बुला लाने के लिए उससे प्रार्थना की।

पहर भर दिन रहते मिसिरी गोसाई हरदयालपुर के नामी वैद्य को साथ लेकर सुभागी के घर आए!

रामानन्द की नाड़ी देखकर वैद्य ने बताया कि उसके भीतर खून की कमी हो गई है। तिल्ली बढ़ गयी है और उसी के फलस्वरूप उसकी आँखों में कँवरू (पीलिया) भी हो गया है। ज्वर–जूड़ी दोनों अवधि से अधिक शरीर में रहने के नाते अब उनका रूप अधिक भयानक हो गया है।

सुभागी घूँघट के नीचे रोती रही और उसने वैद्य का पैर छूकर रामानन्द के स्वास्थ्य की भिक्षा माँगी। वैद्यजी ने स्वयं एक शरीरलेपन की औषधि दी और उन्होंने औषधियों की एक लम्बी–सी सूची बनवाकर दूसरा नुस्खा तैयार कराया। उसी समय सुभागी ने गोसाई के साथ अपने हलवाहे हंसराज को औषधियों लाने के लिए लालगंज भेजा।

और वैद्य जी को सुभागी ने प्रार्थना करके घर पर रोक लिया। रामानन्द को उस दिन बुखार बिल्कुल न था। वैद्यजी उसी से बातें करते रहे और उन्होंने अपने वैद्य की सफलता का पूरा ब्यौरा दे दिया कि वे किस तरह पूरे जिले भर में प्रसिद्ध हैं। सब बड़े–बड़े जमींदार–चौधरी और ताल्लुकेदारों के यहाँ, घर परिवार में उनकी ही औषधियाँ चलती है। उन्हें बड़ी सी बड़ी दुःसाध्य बीमारियों को दूर करने में सफलता मिलती रही है।

पहर भर रात बीतते–बीतते गोसाई और हंसराज रामनगर से आषधियाँ लेकर वापस लौटे। उस समय तक वैद्यजी अपनी वैद्य की डींग हाँक कर सुभागी से दस रूपये गाँठ चुके थे।

दूसरे दिन वैद्यजी सब औषधियाँ बनाकर और सेवन विधियाँ बताकर अपने घर के लिए विदा हो गये। सुभागी रामानन्द को पूर्णतः अपनी देखरेख में रखने लगी दादी के स्नेह के फलस्वरूप रामानन्द को जो खाद्य अखाद्य मिलता था, उसने बंद करा दिया और स्वयं चौबीस घंटे उसके पास रहने लगी।

पन्द्रह दिनों में रामानन्द का बुखार दूर हो गया। लेकिन उस औषधि तक उसका स्वास्थ्य बहुत कुछ नष्ट हो चला था। उसे अब खाना रूचिकर न लगता था और कुछ खा भी लेता था वह उसी के कलेजे पर जैसे रक्खा रहता था।

सुभागी जहाँ कहीं भी, जिस किसी से भी यह सुनती थी कि अमुक वस्तु, अमुक खाद्य पदार्थ पौष्टिक है, स्वास्थ्यकर है, वह उसे सौ यत्न करके जुटाती और रामानन्द को खिलाने का प्रयत्न करती। वह चाहती थी कि बीमारी से टूटा हुआ उसका ईश्वर जल्द से जल्द अपनी पिछली स्वाभाविक दशा पर पहुँच जाय, वही फैला हुआ ऊँचा सीना, गोल–गोल बाँहें और रतनारी आँखें।

माघ का महीना बीतने जा रहा था। रामानन्द की बीमारी ने उसकी रबी फसल पर बहुत बुरा प्रभाव डाला था। पूरब के सिवान में पक्के दो बीघे मटर को पाला मार गया था और फसल आधी हो गयी थी।

दक्षिण के सिवान में टेढ़वा खेत का गेहूँ उचित समय पर पानी न पाने के कारण दबकर रह गया था। पश्चिम सिवान में बाग के ओछाँह के पास अरहर की खेती को नीलगायों ने चौपट कर दिया था।

सुभागी विवश होकर, अब घर से बाहर निकलने लगी। उसका दुल्हन–पर उसका गंभीर घूँघट धीरे–धीरे कम होने लगा। वह घर भी देखती और अब उसे अपनी बची हुई खेती भी देखनी पड़ती।

एक दिन दोपहर की धूप में सुभागी अपने आँगन में बैठी हुई रामानन्द के शरीर पर तिल का उबटन लगाने चली। कपड़े उतारने के बाद, जैसे ही वह रामानन्द के पैर को छूने लगी, वह सूख सी गई। उसने देखा दोनों पैरों में सूजन आ गयी थी, फिर उसने उसके पूरे शरीर को एक काँपती हुई दृष्टि से देखा। शरीर भर में सूजन थी। मुख पर जैसे खून की जगह पानी भर रहा था। गाल और आँखों के बीच के उभार में एक पीला–पीला न्हि सुभागी की दृष्टि में इस तरह खिच गया जैसे, कोई भयानक स्वप्न रात के अंधे सन्नाटे में खिच जाता है।

उसने रामानन्द से कुछ न कहा। अपनी काँपती हुई दृष्टि को उसने रामानन्द की थकी हुई उदास दृष्टि से छिपा लिया।

वह चुपचाप अपनी दृष्ठि में एक मौन पीड़ा लिए हुए रामानन्द के शरीर पर उबटन लगाने लगी।

''उदास क्यों हो सुभागी,'' रामानन्द ने मुस्कराते हुए कहा, ''देखो, मैं मोटा तो हो रहा हूँ। मुझे अब खाना भी पचने लगा है।''

सुभागी प्रयत्न करके मुस्करा दी, लेकिन कुछ बोली नहीं।

''सुना है, तुम बहुत अच्छा गीत गाती हो,'' रामानन्द ने पूजा भाव से कहा, ''मुझे लेकिन कभी नहीं सुनाया!''

सुभागी उदास हो गयी। उसने अपने को संभाला, झट से वह मुस्करा दी और उसे देखती हुई मुस्कराती रही। फिर भी वह कुछ बोली नहीं।

''गाओगी नहीं, तो तुम्हारे गीत भूल जाएँगे.....फिर.....।'' रामानन्द कहते–कहते सहसा रूक गया। उसके फूले हुए पीले चेहरे पर लज्जा और संकोच की एक ऐसी लहर दौड़ गयी, जैसे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया हो। उस क्षण सुभागी ने देखा, न जाने कहाँ से रामानन्द के मुख पर तमाम खून दौड़ आया था।

इस खून का स्रोत कहाँ है? किस प्रेरणा शक्ति से खून की वह अद्‌भुत लाली इनके पीले चेहरे को एकाएक रंग गयी है? सुभागी अपने भोले मन में सोचने लगी, ''गाओगी नहीं, तो तुम्हारे गीत भूल जाएँगे.....फिर.....इस ''फिर'' के आगे क्या आने वाला था, जिसे इन्होंने सज्जावश छिपा लिया है। सुभागी इच्छा करने लगी। क्यों न ये इसी बात को ''गाओगी नहीं तो तुम्हारे गीत भूल जायेंगे.....फिर .....' बार–बार दुहराएँ और बार–बार इनके पीले, सूजे हुए चेहरे पर उसी तरह रक्त की लाली फिरती जाय, फैलती जाये और ये स्वस्थ हो जायें। फिर सुभागी उसे अपनी बाहों में छिपाकर घर में, आँगन में, मचान पर, खेत में इतने गीत सुनाए, इतनी ढोलक की तान लगाए कि उससे सिकन्दरपुर की सार उदासी, सारा सन्नाटा खो जाये।

सुभागी क्षण–क्षण में रामानन्द के मुँह को देखती जा रही थी और उसकी दृष्टि कुछ ढूंढ रही थी।

''क्या देख रही हो मुझे?'' रामानन्द ने मुस्करा कर पूछा।

''बता दूँ?'' सुभागी बच्चों की तरह यह कहकर शरमा गयी।

''हाँ बता दो!''

''गाओगी नहीं तो तुम्हारे गीत भूल जायेंगे.....फिर.....।'फिर' क्या, बताओ न?''

रामानन्द खुलकर हँस पड़ा। पूरे दो महीने के बाद सुभागी ऐसी हँसी सुन सकी। सूजे हुए शरीर को वह भूल गयी। उसे लगा, वह उस रामानन्द के शरीर में उबटन लगा रही थी जो स्वस्थ है, सुन्दर है, महान है और उसका ईश्वर है। जिसकी गोरी स्वस्थ बाहों में इतनी शक्ति है कि वह उस से सुभागी को कमर से बाँधकर अपने बराबर उठा लेता है। आँगन भर में उसे लिए हुए चक्कर करता हुआ हँस–हँस कर कहता है– सुभागी! ओ सुभागी!! मैं तुझे इसी तरह लिए हुए आकाश में उड़ सकता हूँ। रामनगर क्या कलकत्ते तक भाग सकता हूँ।

''फिर'' क्या, बताओ!'' सुभागी ने शिशुवत आग्रह किया।

''बताऊँ! बताऊँ!!'' रामानन्द के चेहरे पर फिर वही अरूण रेखाएँ दौड़ आयीं!

''हाँ बता दो न..... बोलो।'' सुभागी प्रसन्नता से पागल थी।

''गीत नहीं गाओगी, तो तुम्हे गीत भूल जाऐंगे .....फिर....फिर ...!'' रामानन्द एकाएक रूक गया, जैसे उस के गले में एकाएक कुछ टूट गया।

''हाँ फिर!'' सुभागी ने नई प्रेरणा दी।

''फिर.....! जब तुम माँ हो जाओगी..... तब तुम अपने बच्चे को क्या गीत सिखाओगी?''

सुभागी की दृष्टि अपलक रामानन्द के पूरे चेहरे पर रूकी रही। लेकिन उसने खून की उस लाली को इस बार न देखा। उसने इस बार कुछ और देखा– अजीब करूणा। रामानन्द की आँखें आँसुओं से डबडबा आयीं थीं और उसका पूरा चेहरा बेहद उदास हो गया था।

और स्वयं उसकी दशा?

'फिर जब तुम माँ होओगी.....' रामानन्द के इतने ही शब्दों ने सुभागी के सारे रक्त को ऊष्ण कर दिया और धक्–धक् करते हुए उसके हृदय के ऊपर की शिराओं में इतना रक्त बहा दिया कि उसका चेहरा उस क्षण स्वस्थ खून की लहरों से भर गया और उसके ओंठ, मस्तक, आँख और कान तप्त हो उठे। उसे उस पल ऐसा लगा जैसे, उसके पैर में से कोई मछली दौड़ती हुई शरीर की सब नसों में धूम गयी हो और हृदय की गति में उछलती हुई उसके चेहरे पर छा गयी हो और फिर आँखों के रास्ते वह बाहर निकल गयी हो।

सुभागी का हृदय अब तक धक–धक कर रहा था और उसकी आँखें भर आयी थीं, क्योंकि आँसुओं के साथ ही वह मछली सरक कर भागी थी।

और वह मछली थी क्या!

क्या वही रामानन्द का खून था। वही उसके चेहरे की लाली थी, जो 'फिर' के आगे अपने पंख तान कर रूकी हुई थी और अब सब तोड़ कर भाग गयी, वह अरूण मछली!

सुभागी के भीतर एक अव्यक्त आवेश फैलने लगा। वह रामानन्द के पासे से तेजी से उठी। दादी खेत से आ गयी थी। उसने बाहर का दरवाजा बन्द किया और दौड़कर पिछवाड़े की खिड़की बन्द की। आंगन में उतरते–उतरते

उसके भीतर का रामानन्द, जैसे सुभागी को पुकारता हुआ कह रहा हो– पकड़ ले उस मछली को! अपने गीतों से बाँध ले उसे! जाने न पाए वह मछली!

सुभागी रामानन्द के पूरे शरीर पर उपटन लगा चुकी थी। रामानन्द के शरीर भर में हाथ–पैर अपेक्षाकृत अधिक सूजे हुए थे। अब सुभागी फिर पैर में, वैद्य का दिया हुआ एक विशेष तेल लगाने लगी।

और निःसंकोच गाने लगी, बिना किसी झिझक और शर्म के जैसे भक्त भावोन्मेष में अपनी सीमाओं को तोड़कर ईश्वर के सामने गाने लगता है–

पहला दृश्य।

मैं अब घर में प सोऊँगी मेरे राजा! मुझे गर्मी लगती है। खिड़कियाँ खुली रहती है, तब भी। मेरे लिए उस रेत के मैदान में एक बंगला छवा दो। हम वहीं सोऐंगे और जमुना की ठंडी–ठंडी लहरें हमें पंखा झलेंगी। वहाँ जब चाँद हमारी खुली हुई खिड़कियों से हमें झाँकेगा तब हम उसे मना कर देंगे। और वह मान जायेगा।

दूसरा दृश्य।

साजन अभी न जाओं। देखो मैं काँप रही हूँ न! मुझे अपने हाथों से छूओ। नहीं, नहीं.....ऐसे नहीं। पहले मेरे घूँघट को हटाओ न! हाँ, देखों जब, मेरी आँखों में एक दुल्हन बैठी है न! वह कुछ कहेगी नहीं, वाणी रहते हुए भी कुछ नहीं बोल पाएगी, बस, जमीन में सिर गाड़े, अँगूठे से एक छोटा–सा गढ़ा बनाती जायेगी और जब तुम बिना उसे मनाए ख्ले जाओगे तब वह इसी तरह रोती रहेगी और आँसुओं से उस गड्ढे को भर देगी। अभी मत जाओ मेरे राजा। अभी तो मेंहदी नहीं छूट सकी है। सुहाग के काजल अभी लगे हैं। मैंने अभी वह चुनरी नहीं बदली। देखो ये बिछुए, ये पायल, ये मेरी हथेलियाँ देखो, मेंहदी का रंग कितना चटक है। इसे मेरी उस सखी ने रचाया था जिसने तुम्हारे जामे को अपनी बाहुओं में बाँध लिया था और तुम उसे छुड़ा न सके थे।

तीसरा दृश्य।

बोलो। कुछ कहते जाओ। आज हम सारी रात इसी तरह बिता देंगे। ऊख के खेत में महोख बोल रहा है। कठार में सारस का जोड़ा बोल रहा है। सुनो, टिटिहरी बोलती हुई क्या कह रही है?

मेरे हाथ को जोर से दबाओ, और जोर से दबाओ न! फिर मैं चिराग को बुझा दूँगी। खिड़की के बाहर नीम की पत्तियाँ हवा में सन–सनाएँगी। टिकुली जैसी, इमली की पत्तियाँ बरस पड़ेंगी। रूठो नहीं राजा! मुझे छोड़कर मत जाओ। नहीं तो यह रात वह चाँदनी, दोनों मुझे डरायेंगी। नीम और इमली की सनसनाती हुई पत्तियों मुझे डस लेंगी। मैं काँप रही हूँ। मुझे सँभाल लो, फिर चले जाना, नहीं तो ऊख में महोख सदा बोलता रह जायेगा। बँसवारी में बनमुर्गियाँ कराहती रह जाऐंगी। सारस प्यासा रह जायेगा। टिटिहरी पुकारती रह जायेगी और यह चिराग इसी तरह सारी रात जलता रह जायेगी।

और चौथा दृश्य।

मुझसे अब मेरा आँचल नहीं सँभलता। न जाने क्यों, बार–बार खुल जाता है। लोग मुझे देखते रह जाते हैं। क्या करूँ, मेरी सब चोलियाँ छोटी पड़ गयीं। अब मेरी गोद में कुछ रख दो। मेरा आँचल प्यासा है.....।

और एक अधूरा दृश्य।

सुभागी पूरा चित्र खींचने ही जा रही थी कि रामानन्द सहसा वहाँ से उठ पड़ा और जैसे, वह दरवाजे की ओर भागने लगा हो। उसकी साँसें एकाएक फूलने लगीं, और वह काँपने लगा।

सभागी ने बरामदे में बढ़कर रामानन्द को अपनी बाहुओं में सम्हाल लिया, वह लड़खड़ा कर गिरने ही जा रहा था।

''कहाँ जा रहे हो?'' सुभागी ने घबड़ा कर पूछा।

''दरवाजे पर!'' काँपती हुई आवाज से रामानन्द ने उत्तर दिया।

''क्या बात है? गीत अच्छे नहीं लगे?''

''बहुत अच्छे लगे तभी तो,'' रामानन्द ने अब स्वस्थ मन से कहा, ''देखो मैं कितना प्रसन्न हूँ।। कल हम लोग सागरा चलेंगे। उस बार झडुल्ले बाबा का हम लोगों ने दर्शन नहीं किया था ना।''

''क्या होगा दर्शन करके?'' सुभागी ने लजाते हुए पूछा।

''अपने इतने अच्छे–अच्छे गीत किसे सिखाओगी?''

''बक्!''

सुभागी ने आँचल से अपना मुँह ढँक लिया। रामानन्द आँगल में उतर आया। आँगन में खड़ा–खड़ा वह उस स्थान को देखने लगा जहाँ सुभागी ने बैठकर उसे गीत सुनाए थे।

पाँचवे दिन रामानन्द की बैलगाड़ी सिकन्दरपुर से सीधे चलकर सागर में झडूल्ले बाबा की कुटी पर रूकी। उस समय पहर भर दिन चढ़ चुका था। लेकिन कुटी के साधू लोग अब तक धुई रमाए अपने–अपने आसन पर बैठे थे।

रामानन्द के हाथ–पैर फूल आने से अब वह अधिक दूर न चल सकता था, लेकिन उसमें चलने की हिम्मत अवश्य थी। सुभागी के साथ जब वह डंडे के सहारे सगरे में स्नान करने के लिए चला, तब पैदल चलते हुए उसे ऐसा लग रहा था, जैसे फूले हुए पैरों का खून उसके पतले चमड़े को फोड़ कर अभी बाहर वह निकलेगा।

रामानन्द किसी तरह सगरे तक पहुँच गया, लेकिन उसने सुभागी से उस कष्ट को न बताया।

उस भयानक अनुभव को न स्पष्ट होने दिया, जिसे वह प्रत्येक पग चलते हुए भोग रहा था।

सगरे से स्नान करने के बाद वे दोनों कुटी की ओर बढ़े। कुटी पर और भी औरतें आयी थीं। सब कुटी की परिक्रमा कर चुकी थीं और अब साधुओं के पास बैठी–बैठी उनके वचन सुन रही थीं।

जिस समय सुभागी कुटी की परिक्रमा करने चली, उस समय वह बिल्कुल अकेली थी। रामानन्द कुटी के सामने सर टेके हुए प्रार्थना कर रहा था। शेष औरतें और उनके पति अलग–अलग साधुओं के पास बैठे थे।

जैसे ही सुभागी आँचल फैला कर परिक्रमा के लिए अपने पैर बढ़ाने लगी, उसने सुना, पीछे से कोई ठहाका हवा के शून्य में खिचा हुआ उसके पीछे–पीछे चल रहा था।

सुभागी बिल्कुल न समझ पा रही थह। लेकिन जिस समय वह कुटी की परिक्रमा समाप्त करके रामानन्द के सामने खड़ी हुई उसकी आँखों में आँसू थे।

''अपनी आँखें तो पोंछ डालो सुभागी!''

रामानन्द के यह कहने पर सुभागी को केवल वही ठहाका याद आया और कुछ नहीं।

उसने आवेश में पूछा, ''हमारे पीछे कौन हँस रहा था?''

रामानन्द ने उदासी से साधू के उस जवान चेले की ओर इंगित किया, तो भाँग की पत्तियों में से उसके बीज अलग कर रहा था।

सुभागी तेजी से उसके पास बढ़ गयी और निश्चित स्वर में उसने पूछा, ''तुम मुझ पर क्यों हंसे?''

''मतवा, मैं तुम पर नहीं हँसा, तुम्हारे ईश्वर पर हँसा!''

''क्या मतलब?''

''माता, पहले तुम अपने पति के मर्ज की दवा करो'', चेले ने कहा, ''उस मर्ज के बाद इस कुटी का दर्शन है। यह मर्ज बड़ा खराब है!'' ''यह कोई मर्ज नहीं है!'' सुभागी ने बताया, ''इन्हें दो–ढोई महीने जूड़ी–बुखार आया है, कमजोर हो गये हैं। इसी से इनके हाथ–पैर में सूजन है। यह तो अपने आप बिल्कुल ठीक हो जायेंगे..... खाने–पीने से। मैं इन्हें दूध–घी, फल मेबे से पाट दूंगी!''

चेला फिर ठहाका मारकर हँस पड़ा। इस बार कुटी के आस–पास, सब लोग बैठे हुए लोग इधर ही देखने लगे।

सुभागी घबड़ा गयी।

चेले ने धीरे से कहा, ''मतवा! तुम्हारे पति को मामूली मर्ज नहीं है, उसे कोढ़ हो रहा है!''

सुभागी को जैसे, किसी ने उस क्षण कमर से एकाएक तोड़ कर जमीन पर बिठा दिया हो। उसकी पलकें खुली रह गयीं और वह देखती रह गयी।

सुभागी की बैलगाड़ी सिकन्द्रापुर की ओर चलने को हुई। उसी समय सुभागी को सागरा का सीताकुण्ड याद आया। और उस विश्वासनिष्ठा की याद आयी कि सीताकुण्ड के पानी–कीचड़ के स्पर्श से लोंगों के बड़े से बड़े रोग और व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

बैलगाड़ी कुटी से चलकर सीताकुण्ड पर आकर रूकी। सुभागी ने रामानन्द को जमीन पर उतारा। वह चाहती थी कि रामानन्द सीताकुण्ड में उतरे और वहां पानी–कीचड़ में अपने हाथ–पैर डुबो कर बाहर निकले। लेकिन रामानन्द की हिम्मत पस्त थी। वह किसी तरह कुंड में उतर तो सकता था, लेकिन निकलता कैसे? यही उसकी दुश्चिन्ता थी।

सुभागी ने मन–ही–मन, संकल्प किया था कि वह रामानन्द को कुंड में उतारेगी अवश्य और उसने अपना संकल्प पूरा भी किया। लेकिन जब वह रामानन्द को सहारा देती हुई ऊपर चढ़ाने लगी, रामानन्द एकाएक पैर की पीड़ा

से चीख पड़ा। उसके दाऐं पैर के चमड़े कई जगह फट गए और पैर से खून बह चला। ऊपर से हंसराज दौड़ा। दोनों ने रामानन्द को उसकी बाहुओं से उठा लिया और सब कुंड से बाहर हो गये।

दिन ढल चुका था। फागुन का पछियाँव बहुत तेजी पर था। सुभागी को ज्ञान था कि फगुनहट में शरीर का खून पतला होने लगता है। शरीर मे कहीं थोड़ा–सा घाव हो जाने पर खून बह निकलता है और उस पर पछियाँव की चोट बहुत दुखदायी होती है। सुभागी ने रामानन्द के दाएँ पैर के घाव में सेम की पत्ती के रस निचोड़ कर उसे भर दिया और पूरे पैर को उसने कपड़े से बाँध दिया।

रास्ते भर सुभागी ने अनुभव किया रामानन्द कितना चुप–उदास हो गया था। उसके चेहरे की करूणा ऐसी लग रही थी जैसे, शमशान पर चिता जल रही हो और उसकी धधकती हुई चिता को दुखता हुआ वह एकाकी पुरूष बैठा हो, जिसने कफन लपेटकर चिता में आग लगायी हो।

सुभागी रामानन्द को देखना चाहती थ, लेकिन रामानन्द उससे अपनी आँखें चुरा रहा था। वह शून्य में देखता, उड़ती हुई धूल में देखता, और जहाँ कहीं भी पीपल–बरगद के पत्तों से हवा का संघर्ष उठता, वह न जाने क्यों उसी ओर कान लगा देता।

''उसने झूठ कहा है!'' सुभागी रास्ते में एकाएक जैसे, चीख पड़ी हो, ''तुम्हें वह रोग नहीं हो सकता। नहीं हो सकता।''

रामानन्द ने सुभागी को देखा। उसके डरे हुए चेहरे पर एक कंपन थी और वह कंपन उसकी आँखों में अत्यन्त स्पष्ट हो गयी थी, जैसे कोढ़ की विभीषिकाा एक भयानक छाया की तरह उसके समूचे स्त्रीत्व को ढँकती जा रही हो।

फिर रामानन्द रो पड़ा।

फफक कर बच्चों की तरह रोता रहा। सुभागी उसे शान्ति–धैर्य देती हुई अब अपने अंतर्मन में रोने लगी। बैलगाड़ी सिकन्दरपुर की ओर बढ़ती जा रही थी। सुभागी अपनी गोद में रामानन्द के सिर को टेके हुए बैठी थी। वह उसके सिर–कंधा, बाँह और वक्षस्थल को मातृवत् स्पर्श करती हुई गंभीर, पर बीच–बीच में टूटती हुई वाणी से कह रही थी, ''अधीर न हो मेरे ईश्वर! मुझे देखों, मैं कैसे चुप हूँ–शांत हूँ। तुम अधीर होओगे तो मैं कैसे जी पाऊँगी। तुम तो पुरूष हो, मेरा भरोसा.....स्त्री.....मैं.....।'' इसके आगे सुभागी की वाणी एकाएक काँप कर टूट गयीं और उसने जलते हुए अपने निचले ओंठ को दाँतों से भीच लिया और भीतर से बरसते हुए आँसुओं को वह आँखों में टूटने से रोकने लगी।

फागुन के शुक्ल–पक्ष की रात। चौथ की चाँदनी धीरे–धीरे सिमट रही थी। गाँव में हरदीन बाबा की बैठक में लोग फाग गा रहे थे। सामने आम के पेड़ के नीचे एक बहुत बड़ा अलाव जल रहा था और उसके किनारे तमाम लोग घिर कर बैठे थे। बैठक भी गाने और सुनने वालों से खचाखच भरी थी।

गाँव की औरतें सुभागी के घर आयीं और उसे मनाने लगी कि वह चलकर पुरूषों के उत्तर में फाग गाए। सुभागी इसके लिए बिल्कुल नहीं तैयार थी। उसके सारे गीत, उत्साह, मन का यौवन और आँखों की दुल्हन जैसे, सब चिता से टूटकर बीमार हो गए थे। रामानन्द की बीमारी अपने भयानक रूप में अब पूर्णतः स्पष्ट हो गयी थी। हाथ–पैर में कोढ़ का आक्रमण अत्यन्त निर्मम था और उसके विकृत मुँह पर एक अजीब सी स्याह छाया उसने डाल दी थी। शरीर की सारी लावण्यता, पौरूषजन्य दमक मिट चुकी थी और उस पर विषैले खिसखिसाहट को लिए हुए एक ऐसा रूखापन फैल गया था, जैसे, जवान, नम और अंकुरित मिट्टी पर कहीं रेत बिछ गयी हो।

रामानन्द के पैताने उदास चिंतित बैठी हुई सुभागी, को गाँव की औरतें और उसकी सखियाँ मला रहीं थीं। वे हर तरह के संतोष और धैर्य दे रही थीं, लेकिन सुभागी का मन कहीं से भी फाग गाने के लिए तैयार न था।

अंत में औरतें इस पर औरतें इस पर उतर आयीं कि वह गाए नहीं, लेकिन वहाँ औरतों के बीच में बैठी रहे, नहीं तो इस वर्ष गाँव की औरतें पुरूषों से फाग गाने में हार जायेंगी। लेकिन सुभागी इस पर भी राजी नहीं हुई।

फिर रामानन्द मनाता हुआ उसे औरतों के साथ भेजने लगा। वह चाहता था कि सुभागी अपने में हरी–भरी शांत रहे। हँसे–बोले, गाए, घर–गृहस्थी में उत्साह से भाग ले, क्योंकि वह सोचने लगा था कि वही उसका जीवन है। सुभागी ही उसका सब कुछ है, माँ–बाप, पत्नी, मित्र सब कुछ। और सुभागी अगर उसके साथ इस तरह चौबीस घंटे लगी रहेगी, तो उस पर अकारण मौत की छाया पड़ जायेगी, उसके जीवन तत्व नष्ट हो जायेंगे।

कोढ़ एक तरह का जहर है!

जहर भयानक है!

रोग संक्रामक है!

ये सत्य बातें सदा रामानन्द के मन को दबोचे रहती थीं।

रामानन्द के आग्रह और उसकी खुशी के लिए सुभागी औरतों के साथ हरदीन बाबा के घर गयी। बैठक में पुरूष मण्डली डटकर बैठी थी और उनकी छँटी हुई टोली फाग के गाने में मस्त थी।

दरवाजे के भीतर, ड्योढ़ी में ही गाँव की औरतें, विशेष कर बहुँए और दुल्हनें बैठी थीं। उनके बीच सुभागी के आते ही उनमें अपूर्व उत्साह और प्रेरणा आई। बाहर पुरूषों की टोली झूमर गा रही थी–

''मान जा गोरिया हमार सुन बतिया, यह ले नौलखा हार।''

झूमर समाप्त होते ही स्त्रियों ने उनके उत्तर में फाग गाना आरम्भ किया–

काहे की होरी हमारी पिया बिन, काहे की होरी हमारी।

चैत मास बन फूलन लागे,

भौंरा लटकि रहें डारी, पिया बिन काहे की होरी हमारी।

गाती औरतों के के स्वर में सुभागी का संगीत–भरा स्वर सबके ऊपर उठ रहा था और ढोल पर उसकी अँगुलियों के ठुमके, फाग के संगीत में मनमोहक गूज पैदा कर रहे थे।

आधी रात तक दोनों टोलियाँ बारी–बारी गाती रहीं। थोड़ी देर के बाद जैसे ही सुभागी अपनी जान छुड़ा कर वहाँ से भागी वेसे ही फाग का स्वर मंद पढ़ गया।

हरदीन बाबा की गली को पार करके सुभागी नारायन के घर के दायें मुड़ती हुई, जैसे अपने घर की ओर बढ़ने लगी, बायें से किसी ने एकाएक उस पर पानी फेंक दिया। सुभागी का सारा आँचल सराबोर हो गया और उसने देखा, उसके सामने किरपाल लोटे का शेष पानी लिए, हँसता हुआ कह रहा था, ''भौजी! लो यह लोटे का पानी और मुझे भी नहला दो!''

सुभागी का रास्ता रोके किरपाल उसे पानी का लोटा दे रहा था।

सुभागी चुप थी।

सहसा वह अपने आँचल को संभाले दायें से मुड़ कर तेजी से भागने लगी। किरपाल हँस कर उसके पीछे झपटा और उसने बायें हाथ से सुभागी की दायीं बाँह पकड़ ली। बाँह भींगी थी और सुभागी को उस पर क्रोध आ गया था, उसने बिना कुछ बोले उसे एक झटका दिया और बहुत तेजी से निकल भागी।

रामानन्द सो रहा था। उसके सिरहाने, ताक पर दिया जल रहा था। सुभागी कपड़े बदल कर रामानन्द के पास गयी और खड़ी–खड़ी बहुत क्षणों तक वह रामानन्द को देखती रही, फिर थक कर वह अपनी खाट पर जा कर लेट गयी। पूरी खाट बर्फ–सी ठंडी हो रही थी। लिहाफ को अपने शरीर में लपेट कर वह अपने में भिंची हुई सो जाने का प्रयत्न करने लगी।

धीरे–धीरे उसके शरीर में गर्मी आयी। फिर उसे एकाएक दांयी बाँह में दर्द अनुभव हुआ। उसे लगा कि किरपाल ने फिर बहुत जोर से उसकी दांयी बाँह को भींच दिया है। शक्ति भरी उसकी गोल–गोल लम्बी उँगलियाँ, गद्दीदार–कड़ी हथेली, जैसे सुभागी की भरी हुई गोरी बाँह में घंसती जा रही हैं। उसने बायें हाथ से अपनी दांयी बाँह को छुआ, फिर पूरी बाँह को वह अपनी हथेली में भरने लगी। फिर उसे लगा जैसे, वह सो गयी हो। और वह मानो देखने लगी, स्वस्थ, गोरा, हँसमुँह, उभरा हुआ सीना, चौड़ा कंधा, भरी हुई बाँह, चमकता हुआ ललाट और बड़ी–बड़ी रतनारी आँखों वाला रामानन्द, सफेद धोती और कुर्ता पहने, खड़ाऊँ पर चलता हुआ दरवाजे से उसके कमरे में आता है। और भीतर से किवाड़ बन्द कर लेता है! झुका हुआ वह सोती हुई सुभागी को देखता है, मुस्कराता है और फिर दिये को बुझाकर उसके पास सो जाता है और सुभागी उसकी बाहों में जकड़ उठती है, फिर भोर हो जाता है। न रामानन्द की बाहें थकती है न सुभागी का शरीर।

सहसा सुभागी पसीने से तर हो गयी। उसने लिहाफ को अपने से दूर हटा दिया और वह अपनी दायीं बाँह में ऐसा दर्द अनुभव करने लगी, जैसे वहाँ की हड्डी टूट गयी हो।

वह बाँह दबाये हुए उठ खड़ी हुई और रामानन्द के पैताने आयी और सिसककर रो पड़ी। रामानन्द सोते से जाग गया।

''क्या हो गया तुम्हारी बाँह में?'' रामानन्द ने घबड़ा कर पूछा।

सुभागी सिसकती हुई चुप थी। वह उठ बैठा। सुभागी निश्चेष्ट खड़ी थी। रामानन्द ने फिर पूछा। तीसरी बार पूछा, चौथी बार फिर पूछा फिर भी सुभागी कुछ बोली नहीं। तब वह अपने पलंग से उठने लगा। सुभागी ने बढ़कर उसे रोक लिया।

''मेरी बाँह में दर्द हो रहा है।'' यह कह, वह पलंग पर आकर बैठ गयी। रामानन्द ने दोनों हाथों से उसकी बाँह बाँध ली फिर धीरे–धीरे सुभागी का दर्द कम होने लगा। वह चुप, शान्त हो गयी।

''जाओ अब अपनी खाट पर सो जाओ!'' रामानन्द ने स्नेह से कहा।

सुभागी कुछ बोली नहीं। वह धीरे से बच्चों की तरह मचल कर उसी के पलंग पर सो गयी और उसने रामानन्द को अपनी दायीं बाँह के सहारे पास सुला लिया।

थोड़ी ही देर में सुभागी सो गयी और रामानन्द जागता रहा। दिया जलता रहा। राम का पिछला पहर था। वातावरण की ठंडक बढ़ गयी थी।

उसने दिये के प्रकाश में सुभागी की बंद आँखों को देखा। पलकें जिस बिन्दु पर मुदी थीं उसके किनारे–किनारे आँसू अब तक उभरे थे, जैसे, बहुत देर तक का कोई रोता हुआ शिशु माँ के अंक से लगकर सो गया हो और उसके रूदन की छाप उसकी बन्द पलकों पर हो और उसकी साँसों में भी।

यह रोग जहर है!

जहर भयानक है!

और संक्रामक भी!

रामानन्द की साँसों में डर उभरता जा रहा था। वह धीरे–धीरे अपने सोते हुए शिशु से दूर हटने लगा। पूरी लिहाफ उसने उस पर छोड़ दी और वह स्वयं अत्यन्त सावधानी से पलंग को छोड़, उठ खड़ा हुआ।

दबे पाँव, उसने बंद कमरे की किवाड़ खोली। आँगन के बरामदे में आया। बरामदे के कोने में दादी ने छोटे से गोल–गड्ढे में आग जिला रक्खी थी।

रामानन्द वहीं बैठ गया और गड्ढे की आग को राख के ऊपर लाकर, उसने उसमें कुछ लकड़ियाँ डाल दीं। थोड़ी देर में लपटों वाली आग धधकने लगी और वह उसे लापता हुआ राम–राम राम–राम कहने लगा। फिर वह सहज मन से रामायण की चौपाईयाँ जपने लगा–

'रहा एक दिन अवधि अधारा,
समुझति मन–दुख मयउ अपारा।
कारण कवन नाथ नहिं आये,
जानि कुटिल प्रभु मोहिं बिसराये।
कपटी–कुटिल मोहिं प्रभु चीन्हा,
तातें नाथ संग नहिं लीन्हा।
जो समुझें करनी प्रभु मोरी,
नहिं निस्तार कल्प–सत कोरी।

वह एक स्वर से, स्फुट वाणी में इन चौपाइयों को दुहारता रहा और आग की लपटों में सुभागी को अपलक देखता रहा। कुछ क्षणों में उसे लगा, जैसे, सुभागी जानकी हो गयी, स्वयं उन लपटों में अपनी अग्नि परीक्षा दे रही है। रामानन्द का उक्त चौपाइयों का गुनगुनाना धीरे–धीरे बन्द हो गया। उनके स्थान पर रामायण की अग्नि परीक्षा की चौपाइयां उसके मन में सहज रूप से घूमने लगी :

देखि राख–रूख लछिमन धाए,
प्रगटि कृसानु काठ बहु लाए।
पावक प्रबल देखि वैदेही,
हृदय हरष कछु भय नहिं तेही।
जौं मन–वच–क्र मम उर माहीं,
तजि रघुवीर आन गति नाहीं।
तौ कृसान् सबकै गति जाना,
मो कहें होहु श्रिखंड समाना।

आग की लपटों में सुभागी खड़ी रही। रामानन्द उसे देखता हुआ सोचता रहा। वह जानकी है, लेकिन मैं तो कोढ़ी हूँ। फिर वह इस तरह क्यों अपनी अग्नि–परीक्षा दे रही है? उसने किया क्या है? वह जन्म से आज तक पवित्र है, महान है। अपनी माँ के संघर्षों में वह तपायी गयी और अब वह मेरी राख में तप रही है। वह मिट्टी थी,

तपती–तपती स्वर्ण हो गयी, फिर खरे सोने का क्या होगा? सुना जाता है कि तब वह पिघल जाता है और धीरे–धीरे राख हो जाता है! लेकिन राख तो मैं हूँ और वह, वह सुभागी! मेरा शिशु, मेरी प्रिया, मेरी पत्नी, मेरा सब कुछ,

मेरा अस्तित्व!

मेरी पूजा,

मेरा गन्तव्य!

संध्या।

और उस रात की होली जलने वाली थी। गाँव भर में उसकी तैयारी हो रही थीं।

सुभागी जल्दी से भोजन तैयार करके रामानन्द के शरीर पर उबटन लगाने लगी। उबटन लगा चुकने के उपरान्त उसने उबटन की सारी लीझी इकट्ठा की।

पहर भर रात बीतते–बीतते होली जलायी गयी। होरी–फाग गाते–गाते पुरूष गाँव में आये। सुभागी औरतों के झुंड में गाती हुई जलती होली के पास पहुँची। वह धधकती हुई आग के सामने विनम्र खड़ी हो गयी। जिस बर्तन में उबटन की लीझी भरी थी, उसे वह हाथों में लिए हुए थी।

सहसा उसने बर्तन सहित उबटन की लीझी को आग की नपटों में डाल दिया और वह प्रार्थना करने लगी– ''हे अग्नि देवता! जिस तरह तू उनके शरीर से छुटी हुई उबटन की मैल जला रहा है, उसी तरह तू उनके शरीर का रोग भी जला।''

दूसरे दिन होली बुझ गयी। गाँव के लड़कों ने बुझी हुई राख की धूल उड़ायी। औरतों की ओर से कीचड़–मिट्टी और गोबर की होली मनायी गयी।

दोपहर के उपरान्त फाग–होली का संगीत आरम्भ हुआ और उस बीच से फाग की रँग–रेलिया होने लगीं।

सुभागी ने गाँव के दप समस्त आयोजनों में से किसी में भी भाग न लिया। दिन का तीसरा पहर हो रहा था, सुभागी आँगन के चबुतरे पर बैठी थी। उसके सामने तुलसी के बिरवे खड़े थे और आँगन से भागती हुई धूप एक किनारे पर पहुँच गयी थी। सुभागी की निश्चेष्ट सूनी–सूनी दृष्टि उसी धूप पर टिकी थी। उसके सर का आँचल नीचे गिरा हुआ था। गाँव के वातावरण में फाग–होरी के गीत और ढोलक की आवास गूंज रही थी।

बाहर दरवाजे से रामानन्द लँगड़ता हुआ धीरे–धीरे आँगन में आया। सुभागी उसी तरह उदास–मौन बैठी रही। वह चुपके से आगे बढ़कर सुभागी के गिरे हुए आँचल से उसके मस्तक को ढँक दिया।

सुभागी रामानन्द को देखती हुई इस तरह मुस्कराने लगी जैसे, बिना आँसुओं के कोई रोता हुआ एकाएक मुस्कराने लगा हो।

रामानन्द उसके पास बैठ गया। दोनों चुप थे, लेकिन दोनों की निश्चेष्ट आत्माऐं एक दूसरे से बातें कर रहीं थीं। जब एक रोती थी, तब दूसरी उसे समझाती थी। जब एक का आँचल अपनी विवशता और निर्धनता पर उदास होता था तब दूसरा उसके सूने आँचल में शिशु का प्यार बनकर सो जाता था।

फिर गाँव के युवकों की एक टोली फाग गाती हुई उसके आँगन में चली आयी।

सुभागी सिहर उठी, जैसे वह डर गयी हो। वह आँगन के चबुतरे से भागकर बरामदे में खड़ी हो गयी। रामानन्द वहीं बैठा रहा। आँगन में फाग होता रहा। युवकों ने बढ़कर अबीर–गुलाल और रंग से सुभागी को नहला दिया। सुभागी वहीं बैठी–बैठी सर से पाँव तक तर हो गयी। रामानन्द प्रसन्नता से देखता रहा। फिर वह उस कमरे में गया, आँगन में आया और अपने हाथों एक बाल्टी गुलाबी रंग घोलकर और भरी हुई बाल्टी में एक लोटा डालकर उसने सुभागी को दे दिया।

फाग की धूम में सब मस्त थे। सुभागी ने मस्तक ऊँचा करके रामानन्द को देखा, फिर रंग से भरी बाल्टी को, और पुनः एकबार रामानन्द को, और उसकी आँखों से सहज रूप से आँसू बरस पड़े। लेकिन रामानन्द के मुख की प्रसन्नता और स्नेह की ज्योति, जो उसकी आँखों में उभर आयी थी, उसने सुभागी पर एक स्पप्न डाल दिया। उसने सराबोर साड़ी के आँचल को सावधानी से अपनी कमर में बाँधा और वह आँगन में फाग गाते हुए पुरूषों को रग से भिगोने लगी।

संध्या से छः घंटे रात बीतते–बीतते सुभागी को चार बार कपड़े बदलने पड़े। अन्तिम बार उसने जो साड़ी पहनी, वह कई जगह से फटी थी।

सोते समय जब वह रामानन्द के सिरहाने पीने के लिए पानी रखने गयी, उस समय रामानन्द की दृष्टि उसकी फटी हुई साड़ी पर पड़ी।

उसने विनय के स्वर में कहा, ''तुम तो कहती थी कि मुझे पहनने के कपड़े की कमी नहीं है!''

''कहाँ कमी है!'' सुभागी हँस दी।

''और यह जो फटी–फटी साड़ी पहने हो!'' रामानन्द ने स्नेह से कहा, ''आज शुभ त्यौहार है– होली–फाग, आज फटी साड़ी नहीं पहननी चाहिए!''

सुभागी ने अपना सन्दूक खोला। माँ की दी हुई सब साड़ियाँ वह पहन कर फाड़ चुकी थी। धराऊँ कपड़े में से उसने अपने ब्याह की चुनरी निकाली और दूसरे क्षण उसे पहन ली।

रामानन्द पलंग पर लेटा था। सुभागी पलंग की दायीं बाँह पर चुप–चाप बैठ हुई अपने पति को देख रही थी।

''अब जाओ अपनी खाट पर सो जाओ!'' रामानन्द ने स्नेह से कहा।

सुभागी मौन बैठी रही।

''अब जाओ..... सो जाओ।''

सुभागी निश्चेष्ट थी।

उसने फिर आग्रह किया। सुभागी धीरे से निःशब्द पलंग से नीचे उतर गयी और अपनी खाट पर जा लेटी।

ज्यों–ज्यों वह लिहाफ को अपने शरीर में लपेटती जाती थी, त्यों–त्यों उसे लग रहा था, जैसे, घड़े रंग रहा था, जैसे, घड़े के घड़े रंग कोई उस पर डालता जा रहा है और वह सराबोर होती जा रही है। महीन चुनरी उसके शरीर पर चिपक कर जैसे, खो गयी हो और सचमुच लिहाफ में लिपटी हुई काँपन लगी।

और एक वर्ष बाद।

चैत के दिन थे। रबी की फसल खेतों से कट कर खलिहान में जमा हो गयी थी। रामानन्द बाहर दरवाजे पर बैठा था। उसका रोग, पीड़ा से आगे चल कर करूण स्तर पर पहुँच गया था।

वह चुप–उदास था। कभी वह बैठता, कभी लेट जाता और कभी धीरे से उठ कर वह टहलने लगता। लेकिन इन तीनों स्थितियों में उसे कही शान्ति न मिलती थी। उसे लगता था कि उसके शरीर का जहर उसकी आँखों में आ गया है और सारा दृश्य–जगत् जहर के धुएँ में डूब रहा है। वह अपनी आँखें मूँद लेता और हाथों से सर थाम कर वहीं बैठ जाता। धरती धूम रही है, बहुत तेजी से चक्कर काट रही है। चिन्ता से सर फटा जा रहा है। आँखों में जो दृश्य–जगत आता है वह मानों जहरीले धुएँ की एक आँधी है।

मृत्यु क्यों नहीं आ जाती?

एकाएक रामानन्द डर से सिहर गया। मृत्यु का आतंक। फिर वह बिना आँसुओं के रोने लगा। आशा–निराशा, मृत्यु–जीवन, और बिगत के चित्र उसके सामने से गुजरते जा रहे थे।

उन्हें अकेला छोड़कर दादी भी चली गयी। मरना किसे चाहिए, मरता कौन है! जैसे, मृत्यु के पास विवेक नहीं। मृत्यु और असमय, मृत्यु और अंधकार। दादी घर की आवाज थी, और अब वह आवास खो गयी थी।

और सुभागी!..... न जाने कैसे जीवित है, उसके साथ! वह विकृत पुरूष और वह स्वस्थ–सरूपा। वह कोढ़ी पति, वह सुहागन। वह राख, वह आग। वह मृत्यु का भयावह पथ, वह जीवन की स्मित रेखा। एक सन्नाटा, एक गीत।

पूरब के सिवान में चार बीघे जमीन गिरवी रख दी गयी थी। पति को निरोग करने के लिए, उसे स्वस्थ देखने के लिए उसकी बैलगाड़ी भी बिक गयी थी।

उन दिनों सुभागी उसे लेकर रामनगर कस्बे में डाक्टर के पास गयी थी। डाक्टर लखनऊ के मशहूर थे और कोढ़ के रोग के विशेषज्ञ थे। रामानन्द को देखकर डाक्टर ने उससे पूछा था, ''तुम गर्मी–सुजाक के कभी मरीज थे न!'' रामानन्द क सूनी–उदास दृष्टि सुभागी के मूँह पर पड़ी। और उसने डाक्टर के सामने ईश्वर की सौगन्ध खाकर कहा था, ''मुझे यह रोग कभी नहीं हुआ था।''

आज रामानन्द के मस्तिष्क से जैसे ही अतीत में बोला हुआ यह भयानक झूठ गुजर रहा था, उसने अपूर्व शक्ति से इस झूठ को पकड़ लिया और व्यथित–स्वर में पुकार उठा–''सुभागी! सुभागी!!''

सुभागी घर में न थी। पिछले तीन दिनों में केवल दो बैलों के गोबर को उसने अपने घूरे के पास इकट्ठा किया था। आधा गोबर घूर में डाल कर आधे गोबर में खर–खूदुर–परकेसा आदि सान कर उससे उपले पाथ रही थी। इस

वर्ष उसने स्वयं अपने हाथों से उपलों का भितहुर खड़ा किया था। गोबर से लिपे–पुते भितुहर के पास ही बैठी वह पसीने से तर हो रही थी।

रामानन्द का बुलावा उसके पास पहुँचा। वह उसी तरह गोबर में सनी, अस्त–व्यस्त आँचल में अपने को सँभालती हुई रामानन्द के पास दौड़ी हुई आयी।

सुभागी को अपने सामने देखते ही वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और सहसा कहने लगा– ''मैं झूठ हूँ सुभागी! मैं झूठ हूँ।''

सुभागी हतप्रभ खड़ी थी। वह कुछ भी न समझ पा रही थी।

रामानन्द स्वीकार कर रहा था, ''वह लखनऊ का डाक्टर जो कहता था कि मुझे निश्चित रूप से कभी न कभी गर्मी–सुजाक हुई होगी, वह सच कहता था। मैंने तब झूठ बोल दिया था। तब तुम्हारे सामने मेरी हिम्मत न हुई थी, आज मेरी हिम्मत हुई है और आज में बता रहा हूँ। मैं जिन दिनों कलकत्ते में चलकल की नौकरी करता था, उन दिनों मुझे यह बीमारी हुई थी। मैं महीने भर तक बुरी तरह बीमार था। फिर एक बंगाली डाक्टर ने मुझे अच्छा किया। और.....
..और.....और..... ।''

यह कहते–कहते वह एकाएक चुप हो गया।

''तो इससे क्या? यह भी सही!'' सुभागी ने यह कह कर रामानन्द को कंधे से पकड़ कर स्नेह से उसे खाट पर बिठा दिया।

इसके आगे वह कुछ बोली नहीं। वह शून्य में देखने लगी।

''कुछ नहीं, राम–राम करो, बस!'' यह कह कर वह मुड़ी। आँगन में गयी और हाथ–पैर धोने लगी।

तीसरे पहर से दिन अधिक बीत गया था। सुभागी ने अपने छोटे से खलिहान में गेंहूँ के कूटे से अन्न अलग कर रही थी। गाँव के ढोर–डँगर सामने खेत में चर रहे थे।

किरपाल मेड़ पर खड़ा था। संयोवश उसकी दृष्टि खलिहान में सुभागी पर पड़ी। वह चल पड़ा। खलिहान में आम के पेड़ के नीचे आकर उसने साँस भरते हुए कहा,''बड़ी उमस है भौजी!''

सुभागी ने सर उठाया, पर वह कुछ न बोली।

दूसरे क्षण वह सुभागी के सामने जाकर बैठ गया, ''का है भौजी! एसै काम चली?''

सुभागी सोच रही थी कि अब वह क्या करे। वहाँ से उठ कर भागे या उसके मुँह पर थप्पड़ मार दे।

''एक बात सुनो भौजी'', किरपाल ने भेद भरे शब्दों में कहा, ''तनी हमारी ओर देखों न!''

सुभागी ने आग्नेय दृष्टि से देखा और आवेश में वहाँ से उठ पड़ी।

''ऐसे होई भौजी!'' किरपाल ने उठते हुए कहा।

''तुम्हें लाज–शर्म नहीं है बाबू!'' सुभागी रूआँसी हो गई।

रिपाल ने इसका कुछ और मतलब लगाया। उसने सोचा कि उसकी आँखों में एक दीनता है, जिसे बड़ी सरलता से मोल लिया जा सकता है।

सुभागी अपने खलिहान से चलकर गाँव के बड़े खलिहान को पार कर रही थी। सामने गेंहूँ की बड़ी–बड़ी खरहियाँ लगी थी। वह तेजी से भाग रही थी। सहसा किरपाल ने पीछे से उसे पकड़ लिया। सुभागी का रक्त खौल गया। उसने पूरी शक्ति से उसके मुँह पर घूंसा दिया और वह अपने का छुड़ा कर भाग निकली।

किरपाल अपनी नाक सहलाता हुआ वहीं खड़ा रहा, खलिहान में घूमता रहा। फिर अपनी लाठी सम्हाली और सर नीचा किये वह ढोर सम्हालने चला गया।

उसी रात के पिछले पहर, सुभागी के खलिहान में आग लगी। केवल एक ही छोटी–सी गेंहूँ की खरही थी। उसमें पक्के चार बीघे की फसल थी और उसी में आग लगी थी।

चैत की गुलाबी रात थी। खरही जब आधी जल चुकी, तब सुभागी को इस घटना का आभास मिला।

वह सोते–सोते यही स्वप्न में देख कर अपने बिस्तरे से दौड़ी हुई बाहर आयी थी। गुहार मचाती हुई जब वह खलिहान में आयी उस समय तक आग पूरी खरही में फैल चुकी थी। उसे बुझाना असम्भव था। गुहार सुन कर गाँव के जितने लोग दौड़े सभी अपने–अपने खलिहान की चिन्ता करने लगे कि कहीं सुभागी की जलती हुई खरही की कोई चिनगारी उनके खलिहान में न आ जाए।

धू–धू करके खरही जलती रही। सुभागी छाती पीटती हुई चिल्लाती रही। लोग खड़े देखते रहे और आग को सहारा देती हुई पछुआँ हवा धीरे–धीरे बहती रही।

रामानन्द लाठी के सहारे अपनी जलती हुई खरही के पास आया। कातर दृष्टि से वह चारों ओर देखने लगा, फिर जलती हुई खरही की ओर बढ़ने लगा। सुभागी दौड़कर रामानन्द पर टूट पड़ी और उसे खींचती हुई दूर ले जाने लगी। रामानन्द अपने को छुड़ता हुआ पागलों की भाँति कह रहा था, ''मुझे छोड़ दो सुभागी! छोड़ दो मुझे, मैं अपनी जलती हुई खरही की आग में भस्म हो जाऊँगा।''

''क्यों? क्यों?'' सुभागी रामानन्द के सीने से अपना सर टकरा रही थी।

''मैं ब्राह्मण हूँ!'' रामानन्द ने गर्व से कहा, ''मैं इसी आग में जल कर मरूँगा और समूचे सिकन्दरपुर पर ब्रह्म–हत्या लगाऊँगा। दिन–दहाड़े सिकन्दरपुर जलेगा, यहाँ के लोग जलेंगे।''

अजीब भयानक वातावरण हो गया था। समूचा गाँव खलिहान में इकट्ठा था। सुभागी की खरही जल चुकी थी। गेंहूँ का एक भी पौधा न बच सका था। गाँव के वायुमंडल में कुहरे से दवा हुआ, जली हुई खरही का सारा धुँआ ऊपर–ऊपर फैल रहा था और सारे खलिहान में जले हुए अन्न की चिराँयध इस तरह घनीभूत होकर जमी हुई थी जैसे गोधूलि में जलती हुई ऐसी चिता का धुआँ जिसमें चन्दन और घी की सुगन्धि का भार हो।

सुभागी रामानन्द को समझाती रही और स्वयं छिप कर हफ्तों रोती रहीं। लगातार तीन दिनों तक उसका चूल्हा न जला।

सुभागी ने एक दिन रामानन्द को निश्चित बता दिया कि उसके अन्न में किस ने आग लगायी थी। उसने वह पूरी घटना भी बता दी, जिसकी प्रतिक्रिया से किरपाल ने वैसा किया था।

पूरी बात सुनकर रामानन्द कुछ बोला नहीं। भीतर ही भीतर किरपाल को लेकर सुलगता रहा।

रात हुई। सब सो गये। रामानन्द ने धीरे से कमरे के बाहर निकल कर आँगन में आया। आकाश की ओर देखा। वक्त आधी रात से ज्यादा हो रहा था। उसले अपनी कमर बाँधी। मिट्टी के बर्तन में उसने आग के अंगारों को सम्हाला और घर के बाहर निकल कर किरपाल के खलिहान की ओर बढ़ने लगा।

अपने दरवाजे से वह दस ही कदम आगे बढ़ा था। दायीं ओर ही आम का पेड़ था। वह उसी को पकड़े हुए सामने इधर–उधर पूरी स्थिति का अन्दाजा लगा रहा था। फिर वह दृढ़ता से आगे बढ़ा। एकाएक पीछे से कोई दौड़कर उसके पैरों पर गिर पड़ा!

वह सुभागी थी। वह अब उसके पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ा रही थी, ''ऐसा न करो, यह रास्ता गलत है।''

घटाटोप अंधेरा था। उसने आग छीन कर पास के कुएँ में डाल दी और वह रामानन्द को समझाती आगे बढ़ाती हुई उसे घर की ओर ले जाने लगी।

बहुत मोटी तह के नीचे राख थी। ऊपर लकड़ी के अंगारे दहक रहे थे। और पास ही सुभागी रामानन्द को समझाती हुई बैठी थी।

एकाएक चिढ़ते हुए रामानन्द के मुँह से निकला, ''साले का खलिहान फूँकने से तुम मुझे रोकती हो, रोको। लेकिन मैं उसका घर फूँक कर ही दम लूँगा।''

सुभागी चुप थी।

रामानन्द कहता गया, ''उसने हमारा अहार (भोजन) छीना, मैं उसका निवास छींनूँगा।

''कैसे?''

''उसका घर फूँक कर, लंका की तरह उसमें आग लगाकर।''

रामानन्द की उदास आँखें दीप्त हो आयीं। मानसिक यातना की चोट उसके पूरे विकृत मुख पर उभरी थीं। सुभागी से कुछ बोला न गया। वह फफक कर रोने लगी।

आदमी क्यों कोढ़ी होता है? वह निःशब्द रोती रही और इसके उत्तर में उसकी माँ की बतायी हुई एक बात उसमें घनीभूत होती गयी।

आदमी क्यों कोढ़ी होता है?

जब वह किसी की फसल में आग लगाता है, खलिहान फूँकता है और किसी का घर जलाता है, तब वह कोढ़ी होता है।

थोड़ी सी रात शेष थी। दोनों अब तक बुझते हुए अलाव के पास बैठे थे। दोनों का समझौता हो चुका था।

सुभागी ने हाथ जोड़ कर विनय से पूछा, ''जीवन में कभी यह कर्म किया है?''

''क्या?''

''फूँकने या जलाने का?''

''कभी नहीं किया है।''

''कभी नहीं! सुभागी के स्वर में आश्चर्य मिश्रित सुख का भाव था।

''हाँ कभी नहीं, सामने अग्नि माता साक्षी हैं!''

सुभागी ने तुरन्त रामानन्द के जलते हुए मुख पर अपना दायाँ हाथ रख दिया, ''ऐसा नहीं बोलते, मुझ पर गुस्सा हो गये क्या?''

सुभागी की आँखें भर आयीं। उसने सर झुका लिया और उसके मूक आँसू अलाव की रख में टप्–टप् बरसने लगे।

''अब क्यों रो रही हो?'' रामानन्द के स्वर में दीनता थी।

सुभागी ने सर उठाया। वह मुस्करा रही थी। आँसुओं से धुली हुई उसकी साफ आँखों में एक ऐसी शान्ति फैली थी, जैसे सुभागी के मन के भूरे–भूरे बादल आज बरस गए हों और उसका पूरा आकाश निरभ्र हो गया हो।

वैशाख बीत रहा था। सुभागी की गृहस्थी अब तक जौ और मटर के आटे पर चल रही थी। वह स्वयं तो इसी की रोटियाँ खाती, लेकिन वह रामानन्द से छिपाकर अपने कुछ शेष गहनों को बेचकर उसे खालिस गेंहूँ की रोटियाँ खिलाती थी। लेकिन अब उसे इसका भी आसरा धीरे–धीरे टूट रहा था।

संध्या समय, दो सेर जौकराई ले कर सुभागी सुखदेई चौधराइन के घर गयी। सुखदेई से उसकी बड़ी आत्मीयता थी। प्रायः उसी से सुभागी अपने दुख–दर्द कहा करती थी। उस दिन जैसे, ही वह सुखदेई के सामने हुई, और उसने कुशल–मंगल पूछा, सुभागी एक दम रो पड़ी। सुखदेई ने असीम संवेदना प्रकट की और उसे लिए हुए आँगन में बैठ गयी।

आँगन के दायें बरामदे में चौधराईन का बड़ा लड़का परसाद बैठा हुआ बैल की नाथी बना रहा था। बायें बरामदे में चूल्हे की आग के सामने परसाद का छोटा भाई सुमेर पसीने से तर बैठा था। वह बड़ी तत्परता से गर्म सलाख के सहारे एक नयी बाँसुरी बना रहा था!

सुभागी चौधराईन के साथ आँगन मैं बैठी हुई आधे घन्टे तक अपने दुख–दर्द सुनाती रही। चौधराइन ने उस के दो सोर जौकराई के बदले उसे एक सेर गेंहूँ दिया। और सुभागी घर चली गयी।

रामानन्द को भोजन कराने के बाद सुभागी चौके पर से उठी। बड़ी भूख थी उसे। दोपहर की रक्खी हुई मेडूए की सूखी रोटी लकड़ी की तरह हो गयी थी। बड़ी कठिनाई से उसने एक टुकड़ा तोड़ा और दाँतों के नीचे दबाया। भूख की आग, वह रोटी के टुकड़ों से लड़ती हुई उसे खाने लगी। जब उसने पूरी रोटी खा ली और भर पेट पानी पिया, तब उसे अनायास रूलाई आने लगी। ठीक उसी समय बाहर दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी।

सुभागी ने दरवाजा खोलते ही देखा, सुमेर अपने कंधे पर एक बड़ी सी गठरी सम्हाले खड़ा था। सुभागी क्षण भर के लिए हतप्रभ थी। सुमेर भीतर प्रवेश करता हुआ कहने लगा, ''मैं तुम्हारे लिए यह गेंहूँ लाया हूँ, इसे कहीं रख लो!''

दरवाजे की ड्योढ़ी में सुमेर ने गेंहूँ की गठरी उतार दी। सुभागी अब तक चुप खड़ी थी।

सुमेर ने फिर आग्रह किया, ''यह तुम्हारा ही गेंहूँ है, इसे रख लो न!''

''लेकिन यह कर्ज मैं कैसे चुकाऊँगी?''

''कर्ज कौन कहता है!'' सुमेर ने शक्ति से स्फूट–स्वर में कहा। अधिक क्षणों तक सुभागी चुप खड़ी थी। ड्योढ़ी के अंधकार में सुमेर की फूलती हुई साँसों की आवाज से उसे न जाने क्यों भय लग रहा था। उसे लग रहा था, जैसे, उन साँसों में कभी–कभी कोई चीख उठती थी, और कभी–कभी उसमें कोई बेनाम बदबू फैलने लगती थी।

अंधकार में दोनों चुप–निश्चेष्ट खड़े थे। एकाएक सुभागी ने कहा '' मैं यह गेंहूँ न लूंगी। मुझे जो बदा है मैं उसे निवाह लूंगी!''

लेकिन यह गेंहूँ मैं वापस न ले जाऊँगा, ''सुमेर ने कहा, ''यह मैं तुम्हारे ही लिए लाया हूँ.....मैं तुम्हें..... तुम्हें अपना ..... मैं.....!

सुभागी एक ही साँस में भीतर बढ़ गयी। उसने रामानन्द को जगाया दवा दी। वह खाट पर बैठा हुआ खाँसता रहा। कुछ देर के बाद सुभागी चिराग लिए हुए ड्योढ़ी में आयी। बढ़कर उसने दरवाजे पर देखा। सुमेर तख्ते पर लेटा था। सुभागी ने उसी क्षण ड्योढ़ी से गेंहूँ की गठरी उठायी, धीरे से तख्ते के पास रख दिया। तेजी से मुढ़ी, और भीतर से फाटक बन्द कर लिया।

प्रातःकाल सुभागी घड़ा डोर लिए हुए भीतर से बाहर निकली और दरवाजे को पार करती हुई कुएँ की ओर बढ़ने लगी। एकाएक उस की दृष्टि रास्ते पर छिटे हुए गेंहूँ पर पड़ी। वह खड़ी हो गयी। औश्र उसने मुड़कर देखा, एक

ऐसा रास्ता बनाए हुए गेंहूँ छिटा था जो उसके दरवाजे से आरम्भ हुआ था और अपनी उसी गति से वह सुखदेई चौधराइन के घर की ओर बढ़ गया था।

चटपट पानी भर कर सुभागी लौटी। झाड़न ले उसने अपने पूरे दरवाजे पर झाढू देदी।

पहर भर दिन चढ़ते–चढ़ते सुखराज चौधरी अपने बड़े लड़के परसाद के साथ, गाँव के दो पंचों को लिए हुए सुभागी के दरवाजे पर आये। सुभागी कंडे पर आग लिए हुए लौटी और उसने एक ही क्षण में मुद्दई, गवाह और पंचों से सुना कि सुभागी ने गेंहूँ की चोरी की है।

सुभागी की आशंका चरितार्थ हुई। लेकिन उसे अपने सत्य का सबसे बड़ा भरोसा था। उसने सहज भाव से हाथ में लिए हुए अग्नि की सौगन्ध ली– एक बार नहीं, तीन बार। परन्तु उस के उत्तर में उसे एक ऐसी तीखी फटकार मिली, जिसमें एक साथ घृणा, चुनौती, प्रतिहिंसा के स्वर मिले थे और उसके भी ऊपर एक नहीं, तीन बदबूदार गालियों की गति थी।

बैसाख बीतते–बीतते ग्राम पंचायत के अदालत– सरपंच ठाकुर नगीना सिंह ने सुभागी पर पच्चीस रूपये का जुर्माना किया और उसे तीन दिन की मुहलत मिली।

दो दिन बीत गए, सुभागी को कुछ न सूझता था। बार–बार उसके सामने केवल यही एक तस्वीर आती थी उसकी माँ जमुना सामने खड़ी होती थी। उसके दोनों हाथों में जलती हुई आग रहती थी। आग को सामने बढ़ाती हुई वह साग्रह कहती थी– ले सुभागी! इस आग को ले। जिस रात को तेज आंधी आए, उस रात को आँधी की दिशा देखकर गाँव के एक छोर पर तू चुपके से आग लगा दे। आगे मैं देख लूँगी! मैं आंधी हूँ। हर रात को मैं पुरैना गाँव से उठती हूँ और चारों ओर फैल जाती हूँ– हमेशा बहती रहती हूँ।

इस दृश्य से सुभागी घबरा जाती थी। परन्तु उसे कोई रास्ता भी न सूझता था।,

तीसरे दिन की सुबह हुई। जिस अमूल्य वस्तु को लिए हुए वह रात भर सोचती रही, वह थी सोने की केवल एक सुहाग की चूड़ी, जिसे जमुना ने ब्याह के मंडप में सुभागी को पहना कर उसका पाँव पूजा था।

.....निर्विकल्प। सुभागी चूड़ी को कपड़े में सावधानी से बाँधे हुए लालगंज बाजार की ओर बढ़ी। रास्ते में उसे ठाकुर नगीना सिंह के चचेरे भाई अवधू मिले।

''पालगिन महराजिन!'' उन्होंने सुभागी का अभिवादन करते हुए सब हालचाल पूछा। फिर लालगंज के रास्ते पर अनायास बढ़ते हुए उन्होंने कहना शुरू किया– ''महाराजिन! जुर्माना–फुरमाना कुछ मत दो और कहो तो उन्हें आज ही रात को बीस–बीस लाठियाँ पिटवा दूँ। आगे मैं देख भी लूँगा। तुम पर कोई आँच नहीं आयेगी। मैं तुम्हारे सूने दरवाजे पर सोया करूँगा। क्षत्री का तो धर्म ही है ब्राह्मण–गऊ की रक्षा!''

सुभागी चुपचाप पीछे–पीछे चलती जा रही थी। वह अवधू की उन बातों को तो सोच ही रही थी, वरन वह उसके आगे एक और भी छोटी सी बात सोच रही थी कि कहीं अवधू लालगंज बाजार तक उसके साथ न चला जाय, नहीं तो वह निश्चित रूप से गाँजा पीने के लिए रूपये लेगा।

''किस काम से बाजार जा रही हो महाराजिन?'' अवधू ने पूछा।

सुभागी सशंकित हो गयी। उसने झूठ बोलते हुए कहा, ''सरकारी अस्पताल में उनके लिए दवा लेने जा रही हूँ!''

''दवा!'' अवधू ने मुस्कराते हुए कहा, ''क्या महाराजिन तुम भी रामानन्द की दवा के पीछे पागल हो। अरे छोड़ो भी, जो ईश्वर को मंजूर है, वही होता है। विधि की बात को कोई मेट सका है!

सुभागी चुप खड़ी थी। उसकी दृष्टि धरती में गड़ी थी, जैसे उसमें समा जाने के लिए वह कोई उपाय ढूँढ रही हो।

''अट्ठारह–बीस साल की उमर है तुम्हारी,'' अवधू ने रूकते हुए कहा, ''पहाड़ जैसी सारी उमर पड़ी है। इसको पार करने की भी तो चिन्ता करो।''

सुभागी काँप गयी। लेकिन उस कंपन में भय की अपेक्षा एक ऐसे क्रोध की ताप थी जो प्रतिशोध के रूप में नहीं आती, बल्कि यातना के बीच से आत्मा की गहराई लिए आती है।

सुभागी कुछ बोली नहीं। उसने धीरे से सर उठाया और उस दृष्टि से उसने अवधू को देखा, जिसमें वेदना की अमित आग थी।

वह अकेली बाजार पहुँची। महाजन के यहाँ सुहाग की वह सोने की चूड़ी केवल पैतीस रूपये में बिकी। वह उल्टे पाँव लौटी। अदालत सरपंच के यहाँ गयी। संयोगवश उस समय ग्राम पंचायत बैठी थी। सरपंच के सामने सुभागी एकाएक आ खड़ी हुई और गर्व से उसने एक ही दृष्टि से समूची पंचायत को देखा।

पंचायत में शांति फैल गयी। सुभागी ने आकाश के शून्य में आँचल फैलाकर अजीब करूणा मिश्रित विनय से कहा, ''है ईश्वर! इसका न्याय तू कर!''

और उसी क्षण उसने आँचल के छोर से दस–दस के दो नोट और एक पाँच का नोट को खोलकर, तीनों को अलग–अलग किया औश्र कागज के बेकार टुकड़ों की तरह सरपंच के सामने फेंक दिया। पूरी पंचायत को उसने फिर सवर्ग देखा और वह चुपचाप लौट पड़ी।

जेठ के दिन थे। दिन भर लू चली थी और शाम से ही एकाएक हवा रूक जाने के कारण बेहद उमस थी। चार घंटे रात बीच चुकी थी। आँगन में रामानन्द और सुभागी दोनों अपनी–अपनी खाट पर बैठे थे। एकाएक वातावरण में आँधी आने की आवाज उभरी।

सुभागी दोनों खाटों को बरामदे में कर भी न सकी थी कि आँधी आ गयी। बहुत तेज आँधी थी। जिस गति से यह आयी, उसी गति से पक्के दो घंटे तक चलती रही।

सुभागी खाट पर लेटी थी और उसके सामने माँ–जमुना अमूर्त रूप से खड़ी थी और वह स्पष्ट शब्दों में मानों की रही थी, ले बेटी! यह आग है! मैं आँधी हूँ न! देखा, मैं इस गाँव में आ गयी। अब तू चुपके से पश्चिम किनारे से इस गाँव में आग लगा दे, फिर मैं अपना सारा कर्त्तव्य पूरा कर लूँगी।..... चल न बेटी! डरती क्यों है? यह सब झूठ है बेटी! सत्य केवल तू है, तेरी भूख है, तेरा आँसू है, तेरी वेदना और यातना है। गाँव के ये सब लोग भी सच है। क्रूों पाप से डरती है? यह भी कोई चीज है? ईश्वर से भय खाती है? कि उनके बीच तू है। मैं भी तब सच थी जब मैं जमुना रूप में थी। लेकिन उस सच को, उस साधना को, जिस में आशा और स्वप्न के प्राण थे, झूठ और अधर्म ने बरबस पीस डाला। तब से मृत्यु की एक ऐसी आँधी बनकर दिन–रात बहती रहती हूँ, जिस के आँचल में अपने सत्य को जीवित रखने के लिए माँ का अपार दुध है। बेटी! तू मेरा सत्य है। मैं तेरी छाया हूँ, तू आग है, मैं आंधी हूँ।

सुभागी न जाने कब सो गयी। आँधी भी न जाने कब रूकी। लेकिन इतना अवश्य हुआ कि वह सोती हुई तब जगी, जब उसे रामानन्द ने जगाया।

दिन ऊपर चढ़ आया था। दरवाजे पर झाड़ू देकर, कूढ़े–करकट को खाँची में भरे हुए वह अपने घूरे पर गयी।

सुभागी को वहाँ, जैसे मौत ने छू दिया। उसने देखा, उसका पूरा भितहर तोड़कर गिरा दिया गया था और सब उपले–कंडे, चोरों ने लूट लिए थे।

वहीं सर थाम कर वह रोने लगी। गाँव की तमाम औरतें जुट आयीं। कुछ तो बातों में लग गयी, कुठ सुभागी के प्रति संवेदना प्रकट करने लगीं और सबसे अधिक, वे बेनाम चोर को टूट–श्राप और गालियाँ देने लगीं।

सुभागी जब घर लौटी, उसने देखा रामानन्द उस घटना का मुकदमा का रूप देने के लिए घर से बाहर चल पड़ा था। सुभागी ने रामानन्द के लिखे प्रार्थनापत्र को पढ़ा। उन नामों को भी पड़ा और तत्काल भविष्य में आने वाले उन सब परिणामों को भी उसने सोचा, फिर उसका माथा घूम गया। उसने रामानन्द को जाने न दिया। उसे लौटा लिया। यद्यपि वह उस रात को बच्चों की तरह रामानन्द के अंक में अपना मुँह छिपाकर रोती रही और विवश रामानन्द को भी रूलाती रही।

अषाढ़ का पहला पानी उसी दिन बरसा था। दोपहर को जैसे ही बौं टूटी सुभागी हाथ में कुदार लिए हुए पूर्वी सिवान में अपने दो खेतों के मेड़ सम्हालने निकली। टूटे हुए मेड़ों को सम्हालने में उसे पक्के दो घंटे लग गए और इस बीच में फिर पानी बरसने लगा। सुभागी सिवान से दौड़ती हुई, जैसे ही गाँव के बाग में पहुँची, पानी बहुत तेज हो गया। वह कुँए के पास वाले बरगद के पेड़ की छाया में खड़ी हो गयी। बरसते हुए पानी को देखती हुई वह सोचने लगी, तीन ही बीघे धान के खेत सही, उन्हें बोना तो होगा ही। लेकिन बीज कहाँ से आयेगा? खेत कैसे बोये जाऐंगे? कौन बोएगा? कैसे होगा सब?

मैं मर क्यों नहीं जाती? किस लिए मैं जीती हूँ? कौन जिला रहा है मुझेद्य माँ तो मर गयी। मैं न जाने कब करूँगी। माँ कहती थी, मैं अच्छे लग्न में पैदा हुई हूँ। मेरे ग्रह अच्छे हैं। बुहस्पति शुक्र और मंगल का शुभ योग है। लेकिन कहाँ है वे शुभ ग्रह? कहाँ हैं उनकी मंगल दृष्टि? मेरा नक्षत्र तो सिकन्दरपुर है।

बरगद के पत्तों, तनों और डालियों से वर्षा की बूँदें झरने लगी थीं। सुभागी के पास केवल एक साड़ी थी जिसमें उसका तन ढका था। इसलिए वह उसे भीगने से बचाती हुई बरगद के पेड़ से सटी जा रही थी।

तेज वर्षा के कारण छन–छन कर बरगद भी बरस रहा था और उसके आश्रय में खड़ी सुभागी की आँखें भी बरस रही थीं।

कौन है, किसके सामने मैं बार–बार रोती हूँ, सुभागी सोच रही थी। कोई भी तो नहीं है। फिर मैं क्यों रोती हूँ? क्या होगा इससे?

सुभागी रोना नहीं चाहती थी, फिर भी वह रोती जा रही थी। यद्यपि उसके रूदन में शब्द नहीं थे, वाणी नहीं थी, लेकिन उसमें एक अजीब तीव्रता थी, जो घृणा में होती है।

''पालागन महराजिन! ..... ओ हो,, यहाँ भींग रही हो तुम!''

अवधू सिंह को उसने कातर दृष्टि से देखा और वह तेजी से वर्षा में चल पड़ी। अवधू के हाथ छाता था। उसने दौड़कर सुभागी का साथ ले लिया, ''महीाजिन! मैं तुम्हें आज तीन दिनों में ढूँढ़ रहा हूँ!''

सुभागी ने कुछ न सुना। वह अवधू के छाते से दूर भागती गाव की ओर बढ़ रही थी। फिर भी अवधू उसका पीछा कर रहा था। सुभागी को यह दृश्य बहुत ही भयानक लगा। उसने अपेक्षाकृत यही उचित समझा कि वह फिर सामने, आम के पेड़ की छाया में रूक जाय और अवधू की बातें सुन ले।

सुभागी के ऊपर छाता ताने हुए अवधू खड़ा हो गया। कुछ देर चुपचाप उसे देखता रहा, फिर कीने लगा, ''मैं परसों रात को कलकत्ता जा रहा हूँ। वहाँ से सेठ की चिट्ठी आयी है। दरबानी का काम है, साठ रूपये महीना पगार और बाड़ी मुफ्त में!''

इतना कहकर वह सुभागी को देखने लगा। उसने जरा दूर हटकर भरी पलाकों से अवधू को देखा, जैसे उसकी पलकों के उमड़ते हुए आँसू चीख रहे हों.... तो मुझसे क्या?

कुछ क्षणों बाद अवधू ने भेद भरे स्वर में कहा, ''सुभागी! .....'' लेकिन इसके आगे वह तीन बार प्रयत्न करके कुछ नहीं कह सका। अन्त में उसने पेड़ की ओर मुख करके कहा, ''मेरे साथ तुम कलकत्त क्यों नहीं भाग चलती? मैं कमाऊँगा और तुम मेरे साथ ऐश करोगी!''

सुभागी के हाथ से एकाएक उसकी कुदाल नीचे गिर गयी। अवधू ने अपना दाँया हाथ उसके कंधे पर रख दिया। सुभागी जैसे वहीं खड़ी–खड़ी मर गयी और वह सुनती जा रही थी, ''चलो आज रात को ही भाग चलें। क्या उस कोढ़ी के पीछे अपनी फूल जैसी जिन्दगी खराब कर रही हो! छोड़ों इस गाँव को और उसे भी छोड़ो!''

''किसे?'' सुभागी एकाएक, जैसे जी पड़ी। और उसी क्षण उसने हाथ में अपनी कुदाल भी उठा ली। अवधू का हाथ उसके कंधे से नीचे गिर गया और सुभागी ने उस कंधे पर अपनी कुदाल रख ली। उसने अग्नेय दृष्टि से देखा, और बहुत तेजी से वह गाँव में चली गयी।

वह आधी भींग चुकी थी, लेकिन उसे कुछ भी न पता था। उसका मन, मस्तिष्क, निष्ठा–वृत्ति और साधना के पक्ष– सब के सब, जैसे, घायल हो जाने वाले थे। सुभागी दौड़ी हुई रामानन्द की खाट पर गयी औश्र उसके पैरों से लिपटकर रोने लगी। खूब रोयी, और जब उसको अनुभव हुआ कि रामानन्द भी रो रहा है, तब वह चुप हो गयी और रामानन्द को सम्हालने लगी। फिर उसे यह भी पता लगा कि उसकी साड़ी भींगी हुई है।

रामानन्द की धोती पहनकर सुभागी ने अपनी साड़ी को सूखने के लिए फैला दिया। वर्षा की बूँदें टूट चुकी थीं। साँझ हो आयी थी। आँगन में उदासी थी और रामानन्द सुभागी चुपचाप बैठे थे, जैसे उन दोनों में एक मूक वार्तालाप चल रहा था। जैसे, वे दोनों चुपचाप कोई बड़ा फैसला कर रहे थे। सभी आयी हुई और आती हुई घटनाओं को सुभागी रामानन्द से कहती रहती थी, क्योंकि उसने कभी भी रामानन्द से अलग होकर अपने को नहीं सोचा था। इसीलिए रामानन्द ने भी सुभागी से अपने को अलग करके कभी नहीं देखा था। लेकिन उस क्षण जैसे, वे दोनों अपने को निरपेक्ष रूप में सोच रहे थे और स्वयं अपने–अपने को तौलते हुए वे किसी एक ऐसे फैसले पर पहुँच जाना चाहते थे, जो सत्य हो, शुभ हो और उनकी स्वाभाविक गति हो।

''बोलो अब क्या सोचते हो?'' सुभागी ने उदासी भंग की।

''मैं क्या, तुम्ही बोलो?'' रामानन्द के स्वर में असीम वेदना थी।

''तो मैं ही क्या बोलूँ,'' सुभागी ने कहा, और कुछ क्षणों तक वह अपलक रामानन्द को देखती रही।

''लेकिन इस तरह चिन्ता क्यों?'' सुभागी ने कातर स्वर से पूछा।

''इन सब बातों के अतिरिक्त एक बात और भी खड़ी हुई है,'' रामानन्द ने चिन्ता से कहा, ''जब तुम खेत के मेड़ सम्हालने गयी थीं, उस समय दातादीन बाबा मेरे पास आये थे और उन्होंने बताया है कि उत्तर के सिवान में नागाबाबा के थान वाले दो बीघे खेत, जिनसे पिछले दो वर्षों से अलगू को गल्ला दिया गया था, अब वह कह रहा है कि खेत उसी के हो गये हैं, उन पर अब हमारा कोई अधिकार नहीं।''

''अलगू की यह हिम्मत!'' सुभागी इस नयी पीड़ा के सामले सब कुछ भूल गयी।

धोती बदलकर वह अलगू के घर भागी गयी। अलगू ने उससे स्पष्ट कह दिया कि पटवारी के कागज में वे दोनों खेत उसके खुदकाश्त हो गये हैं। उसे अब उसके हक से कोई नहीं छीन सकता।

एक सप्ताह तक सुभागी पटवारी, अदालत–सरपंच और पुराने जमींदार के पास दौड़ी। लेकिन अलगू न माना और उसने बरबस खेतों को वो लिया।

सुभागी को यह अन्याय असह्य था। उसने तय कर लिया कि वह बाप दादों के उन खेतों को अपने हक से न जाने देगी, चाहे उसके लिए शेष पाँच बीघे खेत में से दो बीघे खेत गिरवी क्यों न रख दिये जायें।

उसे विवशतः यही करना भी पड़ा। वह स्वयं अपने तीन बीघे धान के खेत को भी न बो सकी। बल्कि उसे परम विश्वासी मिसरी गासाई को सब बटाई पर देना पड़ा।

इसके उपरान्त सुभागी तहसील में दावा दाखिल करने के लिए मिसरी गोसाई के साथ रामनगर गयी।

जिस समय सुभागी व्यक्तिगत रूप से दावा दाखिल करने के लिए तहसीलदार के इजलाश में पहुँची, तहसीलदार कामता प्रसाद को देखते ही वह चौंक गयी और वह उन्हें कुछ–कुछ पहचानने लगी। उसकी पूर्व स्मृति बिल्कुल ताजा हो आयी। बाँसी, पुरैना, बंती जीजी, नन्नू, पारो बुआ, जैसे सब मूर्तिवत् उसके सामने आते गये। और वह आत्म–विस्मृत सी हो गयी।

वह तहसील के बाहर बैठ गयी। चार बजे। कामता प्रसाद जी इजलाश से उठकर अपनी हवेली की ओर गये और सुभागी आत्मविश्वास और मानसिक प्रेरणा से खिची हुई उनके पीछे–पीछे चली।

हवेली में प्रवेश करते–करते उन्होंने घूमकर सुभागी को देखा और वे वहीं खड़े हो गये। सुभागी दौड़कर उनके पाँव से लिपट गयी और उसने अपने आँसुओं से समय के उस लम्बे व्यवधान को भर दिया जो बाँसी की वंती जीजी से आज तक की सुभागी के बीच में आ गया था।

घर में जाकर सुभागी ने पारों बुआ को पहचाना और गले मिलकर खूब रोयी। फिर सुभागी को लगा, जैसे वह एक नई दुनिया में पहुँच गयी, जहाँ स्नेह है, स्मृति है और जाने की अतुल आशा है।

कामता प्रसाद ने जमुना को याद किया। सुभागी आँसुओं के बीच स्वर्गीय वंती जीजी को याद करती रही और उस याद में नन्नू की स्मृति उसे इतनी तीव्र संवेदना से बाँधने लगी, जैसे मन की किसी घनीभूत पीड़ा के बीच से कोई चला जा रहा हो, चला जा रहा हो।

तब की सुग्गी आज की सुभागी बन गयी। तब का नन्नू आज आनन्द बनकर लखनऊ में पढ़ता है।

तहसीलदार साहब ने बाँसी में खिचे हुए परिवार के उस ग्रुप फोटो को निकाला और सबने देखा। वहाँ सब, जैसे जीवित खड़े थे..... वही स्नेहमयी वंजी जीजी, तहसीलदार साहब, पारो बुआ, साढ़े सात वर्ष की सुग्गी, आठ वर्ष का आनन्द और जमुना। वही आँगन, वही तुलसी के विरवे, जो संयोगवश चित्र की पृष्ठभूमि में आ गये थे, सुभागी सबको देख रही थी, पहचान रही थी, और अपने को बिल्कुल भूल गयी थी।

मिसरी गोसाई के साथ सुभागी जब सिकन्दरपुर लौटी उस समय अंधेरा हो गया था। रामानन्द दरवाजे पर बैठा हुआ सुभागी की प्रतीक्षा कर रहा था।

सुभागी जब रामानन्द के सामने आयी, उसे लगा, मानों रामानन्द कोढ़ी नहीं है। वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया है। उसके मुख पर अमित ज्योति है। सुभागी की प्रसन्नता और उसके मुख की मंगल–कांति को देखकर, रामानन्द ने भी अनुभव किया कि वह पहले का रामानन्द हो गया।

आधी रात तक सुभागी का दीपक जलता रहा। दोनों भरपेट खाना खाया था और वर्षों के बाद दोनों के मुख पर हँसी फूटी थी। सुभागी समूचे शुभ संयोग को जिस गद्‌गद् वाणी से सुना रही थी, उसके क्रोड़ में एक और जीवन के मंगल भविष्य की सच्ची आशा और निष्ठा थी और दूसरी ओर इसमें सिकन्दरपुर के प्रति तीव्र घृणा थी, जहाँ रहकर दम लेना तक उसकी दृष्टि में पाप था।

सुभागी ने फैसला कर लिया कि वह सिकन्दरपुर को छोड़कर राम नगर चली जायेगी। वहाँ से वह अपने खेत का मुकदमा जीतेगी। वहाँ अस्पताल है, डाक्टर है। रामानन्द की वहाँ दवा होगी और वह अच्छा हो जायेगा।

दूसरे ही दिन सब वस्तुओं का उचित प्रबन्ध करके सुभागी ने अपने घर, गृहस्थी, खेत, खलिहान सब मिसरी गोसाई के दायित्व पर सौंप दिया। भोर से भी तड़के का समय था। सुभागी और रामानन्द किराये की बैलगाड़ी पर बैठे और सोते हुए सिकन्दरपुर गाँव को छोड़कर वे चुपचाप रामनगर की डगर पर चल पड़े।

रामनगर में सुभागी को जो कुछ मिला, उसमें जीवन की साध थी। जो कुछ पीछे सिकन्दरपुर में छूट गया, उसमें विरक्ति थी, मृत्यु की लालसा थी। अतएव जो कुछ भी पिछला था, जितनी भी विगत की अनुभूतियाँ थी, उनमें अजीब सी पराजय थी, इसलिए सुभागी यहाँ आकर सबको भूल जाने का प्रयत्न करती थी।

संयोगवश उसे अब जीने के लिए एक नये बिल्कुल नये अप्रत्याशित ढंग का जीवन मिला। यद्यपि उस जीवन की भी आत्मा वही संघर्ष था, साधना थी, लेकिन अब उसमें एक आशा थी, जीवन जीने के लिए है, इस की एक अज्ञात प्रेरणा है, जिसने सुभागी को फिर से जीने के लिए आकर्षित कर लिया।

रामनगर में कामताप्रसाद के आश्रय में सुभागी का पूरा जीवन नया हो गया था। जीवन की एक नयी भूमिका हो गयी थी, जिसका शत–प्रतिशत सिकन्दरपुर के जीवन के विपरीत था।

सड़क के पश्चिम, दायीं ओर, उसे मुफ्त में दो कमरों का एक कच्चा घर मिला। सरकारी अस्पताल से रामानन्द की मुफ्त में दवा होने लगी।

और सुभागी?

वह अपने खेत के हक का मुकदमा जीत गयी और उन खेतों को भी उसने गोसाई को सौंप दिया और अपनी जीवन–चर्या में उसने अपने नये जीवन की गति से विगत के जीवन को चुनौती दे दी। वह हवेली में रसोई बनाने लगी, लेकिन वह अपना भोजन अपने घर में बनाती थी, और रामानन्द के साथ खाती थी। प्रतिदिन उसके जीवन के जितने घंटे तहसीलदार साहब की हवेली में बीतते थे, वह सब उस नए जीवन की रक्षा के लिए था, जिसकी आत्मा रामानन्द था। और जो शेष क्षण उसके रामानन्द के साथ, अपने घर में बीतते थे, वही उसकी तपस्या थी, जिसके आधार पर उसे जीने की आत्मिक मोह था।

सुभागी किसी न किसी भाँति आनन्द को याद किया करती थी। एक दिन पारो बुआ ने अपने बक्स से उसी वर्ष की खिचाई हुई आनन्द की नयी फोटू निकाली और उसे सुभागी को दिखाया। वह देखती रह गयी। कितने बड़े हो गये आनन्द बाबू और कितने गंभीर। तेज मुख पर बंती जीजी के नाक और आँख की कितनी प्यारी छाप है।

चित्र लिए हुए सुभागी पारो बुआ के कमरे से हवेली के पिछवाड़े चली गयी और पपीते के पेड़ों के नीचे खड़ी–खड़ी आनन्द के चित्र को देखने लगी।

निर्जीव चित्र था, सुभागी भी उसके साथ उसी तरह चुप थी। लेकिन उसने अपनी दृष्टि को चित्र की आँख की गंभीर चितवन से मिला दिया और जैसे, वह भी निर्जीव हो गयी। चित्र आनन्द के साथ वह भी बैठ गयी।

दोनों के बीच लकड़ी का घोड़ा था। आनन्द के हाथ में चाबुक और सुभागी के हाथ में गुड़िया थी, जो अभी तक कुमारी थी। सुभागी मचल रही थी कि वह अपनी गुड़िया को आनन्द के घोड़े पर बिठा दे। आनन्द चुप था। सुभागी ने गुड़िया को उसके घोड़े पर बिठा दिया। आनन्द फिर भी चुप था।

फिर सुभागी ने पूछा..... अब यह क्यों!'

''अब हम लोग बच्चे थोड़े हैं,'' आनन्द ने जैसे गंभीरता से उत्तर दिया, ''हम लोगों का वह बचपना, वे अनोखे खेल सब पीछे छूट गये। मैं अब एम0ए0 पास हूँ और अब तुम श्रीमती सुभागवती हो। अब तो हमारे सब खेल छूट गये।

लेकिन आनन्द! तुम्हारे हाथ में चाबुक जो है, तुम आज मुझे एक बार फिर इसी चाबुक से मेरे मुँह पर मारो और डाँटकर मुझसे पूछो– तू अब तक क्यों जिन्दा है सुभागी?''

पीछे से एकाएक पारो बुआ की हँसी उभरी। सुभागी आसमान से धरती पर लौट आयी। लजायी हुई पास खड़ी हो गयी।

''अच्छा, तुम इस चित्र को अपने पास रख लो ना!'' बुआ ने कहा।

''नहीं, बुआ जी! आप ही अपने बक्स में रखिये, मुझसे कहीं खो न जाय!''

फिर सुभागी बुआ के साथ भीतर चली गयी।

पिछले दो पत्रों में क्रमशः बुआ ने सुभागी का परिचय, फिर उसका थोड़ा सा विवरण आनन्द को दिया था। दूसरे पत्र का उत्तर आनन्द ने दिया और उसने बुआ को लिखा था कि उसे सुभागी की याद आ गयी, उसी को वह बाँसी में सुग्गी के नाम से पुकारता था।

तीसरे पत्र में सुभागी ने आनन्द को अपना नमस्ते भेजा और शीघ्र ही दर्शन पाने की कामना प्रकट की। परन्तु इसका आनन्द ने कुछ उत्तर न दिया। इसके बाद सुभागी ने बुआ से दो पत्र, एक के बाद एक, भिजवायें और दिन रात वह उनके आने की वाट जोहने लगी।

अक्टूबर का पहला सप्ताह था। पिछले दिनों कामता प्रसाद दूसरी पत्नी प्रभा, नन्हा और गीता के साथ बरेली, अपने मायके चली गयी थी। वहाँ उनके भतीजे की शादी थी।

उन्हीं दिनों तहसीलदार साहब ने बुआ, रत्ती और सुभागी के लिए जोड़े के कपड़े खरीदे थे। सुभागी फूली समायी थी। पेटीकोट के साथ उसे जो साड़ी मिली थी, वह सब से अच्छी थी। उसी से मेल खाता हुआ उसका ब्लाउज था। दरवाजे ही पर दर्जी ने उसे सिला था।

इतवार का दिन था। दोपहर का भोजन पवित्रता से थाली में सजा कर सुभागी उसे कामता प्रसाद के कमरे में ले गयी और उसे उनके सामने मेज पर उसने रख दिया।

उसके पूरे बदन पर केवल एक पतली सी साड़ी थी और कुछ न था। वह इसी तरह रोज खाना बनाती थी। थाली रखकर सुभागी कमरे से बाहर जाने लगी। कामता प्रसाद ने उसे बुलाया। वह और विनय के सामने खड़ी हो गयी। उन्होंने एक ही दृष्टि में सुभागी को नख से शिख तक देखा, जैसे उन्होंने अभी तक उसे देखा ही न था।

सुभागी सर झुकाए खड़ी थी और उनकी दृष्टि उसके स्वस्थ वक्षस्थल पर गड़ी थी। उसे इस तरह बातों में खड़ी रखने के लिए वे अनेक तरह की बाते करने लगे–''सुभागी, तुझे किसी तरह की तकलीफ तो नहीं है? रामानन्द अच्छे से है न? डाक्टर चढ्ढा कहते थे कि उसकी हालत काफी ठीक है। तू तो मेरी लड़की की तरह है, फिर किसी बात का संकोच क्या? मुझे तेरे पीछे आनन्द की माँ और तेरी माँ जमुना की याद आती है। मेरे रहते तू किसी बात की चिन्ता न करना।..... रामनगर वालों में से तो अब कोई तुझे कुछ नहीं कहता? और अब सिकन्दरपुर वालों की क्या हिम्मत! कोई बात होगी तो मुझसे निःसंकोच कहना। मैं तेनुआँ के थानेदार से सब ठीक करा दूँगा..... संयोग को क्या कहें, तू यही पास के गाँव में मुसीबतों में फँसी रही और मुझे कुछ भी न पता चला! खैर.....।''

सुभागी कामता प्रसाद की सारी बातों के उत्तर में आर्द्र नयन, सर झुकाए इतना ही बीच–बीच में कहती जाती थी–''बाबू जी, सब आपकी कृपा.....सब ठीक है बाबू जी!..... हाँ बाबू जी, नहीं बाबू जी.....!''

और शेष वह चुपचाप धरती ही देख रही थी। और कामता प्रसाद की वाणी भोजन के बीच से बातें कर रही थी और उनकी पैनी दृष्टि अपनी गंभीरता में सुभागी के शरीर पर बहुत तीव्रता से त्रिभुजाकार घूम रही थी, जैसे उस दृष्टि से कुछ देखा नहीं जा रहा था, बल्कि उसे दृष्टि में, जैसे एक हाथ था, जो सुभागी के वक्षस्थल के महीन कपड़े को दूर हटाकर उसके स्वस्थ वर्तुल बिन्दुओं को स्पर्श कर रहा था। और जैसे उस स्पर्श करते हुए हाथ में एक जिव्हा भी थी, जो सुभागी के सुन्दर शरीर का स्वाद भी ले रही थी। और वह स्पर्श, वह स्वाद भाजन करते हुए कामता प्रसाद की आँखों में साफ उतरता जा रहा था।

सुभागी मुड़ी। भागी। आँगन में गयी और कपड़े बदल कर अपने घर चली गयी।

शाम को सुभागी अपने घर से बहुत देर को लौटी। हवेली में सब लोग उसका इन्जार कर रहे थे। उसने आते ही आनन्द के पत्र के बारे में बुआ से पूछा, लेकिन उस दिन की डाक में उसका कोई पत्र न आया था।

उस दिन, रात का भोजन सुभागी ने बहुत अलस मन से बनाया। थोड़ा तो उसके सर में दर्द था और उसका मन भीतर ही भीतर न जाने क्यों अकुला रहा था।

भोजन तैयार करके उसने आज सबसे पहले पारो बुआ को साग्रह खिलाया। फिर उसने अपनी पूरी बाँह की कमीज पहनी, तहसीलदार साहब के लिए थाली लगायी और उसे लिए हुए वह उनके कमरे में गयी।

कामता प्रसाद ने सुभागी को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा और वे मुस्करा पड़े, ''अरे! आज तूने कमीज पहन कर खाना बनाया है?''

सुभागी कुछ बोली नहीं, उसने धीरे से सर हिला दिया।

''खैर कोई बात नहीं'', कामता प्रसाद ने स्नेह से कहा, ''लेकिन तूने यह क्या भद्दी सी कमीज पहनी है। तेरे लिए तो मैंने जो ब्लाउज सिलवाया है, उसे क्यों नहीं पहनती? जैसी तू है वैसा ही कपड़ा तुझे पहनना चाहिए!''

सुभगी चुप थी।

''कल से उसे ही पहनना, हाँ!''

उसी क्षण वह चुपचाप कमरे से बाहर निकल गयी।

तहसीलदार साहब का सिलवाया हुआ ब्लाउज सुभागी को बिल्कुल नहीं पसन्द था। उसे पहनना वह अपनी बेआबरूही समझती थी। उससे बहुत अच्छा तो वह अपनी साड़ी का आँचल समझती थी। उनसे शरीर तो पूरा ढक जाता था। लेकिन उस ब्लाउज से तो नंगा ही भला। पूरा शरीर कस जाता था, जो अंग ढकने के होते थे, उस ब्लाउज से उनमें और बेपर्दगी आ जाती थी। पूरी बाँहें खुली–खुली। पूरे ढंग से पूट भी नहीं ढक पाता। पहनते ही दम घुटने लगता था। दहिजरा, वह भी कोई पहनावा था। सुभागी को उससे सहत चिढ़ थी।

कामता प्रसाद सुभागी को दो दिनों तक टोकते रहे, लेकिन उसने अपना पहनावा नहीं बदला। तीसरे दिन दोपहर को सुभागी ने बताया, ''बाबू जी! मुझे वह कपड़ा बहुत कसा लगता है!''

''इसीलिए वह मेरा सिलाया हुआ ब्लाउज तुझे पसन्द नहीं'', कामता प्रसाद ने गंभीरता से कहा, ''और मुझे तुम्हारी यह भौंड़ी कमीज पसन्द नहीं। तू मेरी हैसियत नहीं समझती! तुझे कोई ऐसा देखेगा तो मुझे क्या कहेगा?''

जो थोड़ा–सा सर दर्द सुभागी को पिछले दिन हुआ था, वह दूसरे दिन बहुत बढ़ गया। पूरे दिन वह सर दर्द से हैरान थी। फिर भी वह कराहती हुई चौके में रसोई बनाने बैठी। लेकिन पारो बुआ ने उसे बनाने न दिया। और अगले दो दिनों तक सुभागी की दशा वैसी ही रही।

दर्द से कराहती हुई, वह सर थामे, दीवार के सहारे बैठी थी। पारो बुआ खाना तैसार कर रही थीं। तब–तक बाहर से रत्ती हाथ में एक लिफाफा लिए दौड़ी हुई आयी–''बुआ लखनऊ से आनन्द बाबू की चिट्ठी!''

''सच! देखें!'' सुभागी को जैसे, क्षण भर के लिए सारा दर्द भूल गयी।

''हाँ–हाँ,..... सुभागी को दे दे न!'' बुआ ने कहा, ''मैं चौके में हूँ, उसी को दे दे ..... वह पढ़ देगी!''

''अब तो सर–दर्द अच्छा हो जायेगा न!'' रत्ती ने सुभागी की चिट्ठी देते हुए कहा। औश्र वह आँखों में शरारत लिए हुए उससे सटकर बैठ गयी।

सुभागी ने प्यार से उसकी पीठ पर चपत–सी लगा दी और वह खत खोलने लगी। इसबार आनन्द ने बुआ के खत के साथ सुभागी को भी एक अलग से खत लिखा था और दोनों में उसके आने की तारीख लिखी थी।

रात को सुभागी अपने घर गयी और खा पीकर वह अपनी खाट पर लेटी तब उसे लगा जैसे कहीं से फलों की ताजी सुगन्धि उसके भीतर फैलती जा रही है। और उसका दर्द से घूमता हुआ माथा धीरे–धीरे हल्का होता जा रहा है। और उसे लग रहा था जैसे, कोई उसके जलते हुए माथे पर चंदन की तरह नर्म और शीतल हथेलियाँ रखकर उसे सुला रहा है।

थोडी देर के बाद सुभागी सो गयी। और वह स्वप्न देखने लगी। एक लम्बा, बुहत काला–उरावना साँप है। सुभागी उसे बहुत मारती है, लेकिन वह मरता ही पहीं, न वह सुभागी को काटता ही है। जब वह मारते–मारते थकर चूर हो जाती है, तब वह विषैला साँप, उसके पैर से ऊपर चढ़ता हुआ गले तक चला आता है और उसके गले से वह हार की तरह पहन उठता है और वह ठटपटाती हुई रोने लगती है। फिर घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजकुमार आता है। उसके मुकुट में मोर के पंख लगे हुए हैं और उसके पीछे–पीछे तमाम मोर नाच रहे हैं। राजकुमार पास आता है। चुपके से साँप उसके गले को छोड़कर कहीं खिसक जाता है। मोर नाचते ही रह जाते है और राजकुमार चुपके, वहाँ से भाग जाता है।

उस शाम को आनन्द के आने की तिथि थी। सुबह से ही सुभागी के मन में एक अजीब–सी घबड़ाहट हो रही थी। किसी भी काम में उसका पूरा मन नहीं लग रहा था। सुबह से शाम तक उसने आनन्द के चित्र को तीन बार देखा था।

संध्या बीत गयी। सुभागी चौके में थी। एकाएक उसे लगा कि बाहर कोई आ गया। वह झट बाहर दौड़ी, उसे अपने पर ग्लानि हुई, वह लौट आयी–''क्या हो गया है मुझे!....मुझे ऐसा नहीं चाहिए..... मुझे तो कहीं अंधकार में छिप जाना चाहिए। रोती रहना चाहिए। उन्हें सुधि होगी तो मुझे ढूढेंगे। फिर मैं देखूँगी वे मुझे रोने से मना करते हैं या नहीं।''

चौके में सुभागी की आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं। पारो बुआ बाहर दरवाजे की देहरी पर खड़ी–खड़ी आनन्द के आने की बोट जोह रही थी। रत्ती आँगन में थी। तहसीलदार साहब कहीं घूमने गए थे।

सहसा बाहर से बुआ की आवाज आयी कि वे आ गए। सुभागी चौके से उठी और पास के अँधेरे कमरे में जा छिपी।

''और सुभागी कहाँ है?'' आँगन में पैर रखते ही आनन्द ने बुआ से पूछा। रत्ती सुभागी को पुकारने लगी।

परन्तु सुभागी सब देखती हुई, सब सुनती हुई, कमरे के अंधकार में छिपी चुपचाप चाड़ी थी। वह आँसुओं के बीच से आँगन में कुर्सी के पास खड़े हुए आनन्द को देख रही थी।

''नहीं मिली वह!'' आनन्द से फिर पूछा।

''वह लाज के मारे कहीं छिपी होगी।'' यह कहकर बुआ ने लालटेन ली और बरामदे में बढ़ती हुई वह कहने लगी, ''अरे सुग्गी! कहाँ छिप गई तू!..... अब तक तो अपने नन्नू को देखने के लिए जान दे रही थी।''

''अरे! तू..... यहाँ खड़ी–खड़ी रो रही है!''

बुआ हैरान हो गयी। तब तक आनन्द ने पास से ही धीरे से पुकारा– ''सुभागी!''

और वर्षों का पुल अपने नए निर्माण के लिए एकाएक टूट गया। सुभागी आनन्द के पैरों से लिपट गयी, और अपनी पूर्ण चेतना में वह तब आयी जब उसे अपनी नंगी पीठ पर आनन्द के हाथ की स्नेह–सांत्वला भरी थपथपाहट महसूस हुई।

सुभागी ने झट से अपनी कमीज पहनी। स्टोब जलाया, और चाय बनाने लगी। आनन्द आँगन में कुर्सी पर बैठा हुआ सुभागी के विषय में पूछता जा रहा था, बुआ उसे बताती जा रही थी। बीच–बीच में रत्ती भी बोल उठती थी। लेकिन सुभागी चुपचाप चाय बना रही थी।

आनन्द चाय पीता हुआ सुभागी को वहाँ से हटाकर, उसे विगत में ले जाकर देख रहा था। सुभागी सात वर्ष की है। झबरे–झबरे उसके बाल है। गोरा–सा लम्गा मूँह है। बड़ी–बड़ी स्वच्छ आँखें हैं। वह माता जी की गोद में बैठी है। जमुना खाना बना रही है।

मातजी गाकर कहती है–

''जे रघुवीर चरन अनुरागे, तिन्हे सब भोग रोग सम त्यागे।''

सुभगी उसी गीत को तुतला कर गाती है–

''जे लघुबील चलन अनुलागे, तिन्हे सब भोग छम त्यागे।''

पास ही आँगन में गेंद खेलता हुआ एक आठ वर्ष का लड़का दौड़ता हुआ आता है और सुभागी के उन झबरे–झबरे वालों को पकड़ कर झकझोर देता है–

''लघुबील–लघुबील क्यों कहती है रघुवीर कहो!''

बच्ची रो देती है। बालक तेजी से भागता है। माताजी उसे खदेड़कर पकड़ लेती है। फिर बालक बच्ची से क्षमा प्रार्थी होता है।

और आज आँगन में बैठे आनन्द को लगा, जैसे वह गेंद खेलता हुआ बालक आज भी सुभागी के सामने खड़ा है। लेकिन अब उसे क्या हो गया, वह तो आज कुछ बोल ही नहीं रही है। बुआ और रत्ती उस की ओर से बोल रही है।

रात को जब, सब लोग खा–पी चुके और सुभागी अब तक बिना कुछ बोले अपने घर जाने लगी, तब आनन्द ने विनय से कहा, ''मैं तुम्हारे घर चल सकता हूँ।''

सुभागी कुछ बोली नहीं। उसने एक क्षण आनन्द की आँखों में देखा फिर दृष्टि नीचे कर ली और वह खड़ी रह गयी।

आनन्द आगे–आगे चलने लगा और छाया की भाँति सुभागी पीछे–पीछे। सड़क पर आते–आते आनन्द के बायें चलने लगी और उसे लिए हुए वह अपने घर पहुँच गयी।

कमरे में एक मैला सा चिराग जल रहा था। मच्छरों से बचने के लिए रामानन्द अपने सर से पाँव तक ढके हुए लेटा पड़ा था। आहट पाते ही रामानन्द ने अपना मुँह खोला।

''यही वे बाबू हैं,'' सुभागी ने टूटते स्वर में कहा, ''और यही मेरे.....।''

सुभागी अपने को सम्हालती हुई वहाँ से हट गयी। रामानन्द के मुख पर प्रसन्नता थी और उसकी आँखें भरी हुई थीं। आनन्द उसे देखता हुआ चुप खड़ा था। कहीं अन्धकार से सुभागी के सिसकने की आवाज आ रही थी। लग रहा था, जैसे अपने जन्म भर का उलाहना, घायल हृदय और वीरान आँखों में संचित सब आँसुओं को वह आज ही रोकर बहा देना चाहती थी। वर्षों से उसको इस भाँति रोने की अमित अभिलाषा थी।

''अरे सुभागी!'' रामानन्द ने पुकारा, ''बाबू को कहीं बैठाओगी कि रोती रहोगी।''

सुभागी अपना बक्स ले आयी और उसने आनन्द के पास रख दिया।

आनन्द बैठकर रामानन्द से बातें करने लगा। सुभागी वहाँ से मुड़ी और चुल्हा जलाने लगी। थोड़ी देर के बाद वह एक गिलास में चाय लिए हुए लौटी। गिलास जल रहा था। सुभागी उसे अपने आँचल के छोर से पकड़े थी। वह उसी तरह आनन्द को गिलास पकड़ाने लगी।

''यह क्या?'' आनन्द ने पूछा।

''यह हमारी चाय है!'' सुभागी ने आँचल में सम्हालते हुए गिलास को उसे साग्रह पकड़ा दिया और खड़ी रही।

''सुख से थे न बाबू!'' सुभागी ने गिलास लेते हुए पूछा।

स्वीकृति में आनन्द ने सिर हिलाया और वह नीचे देखने लगा।

''क्या पता था कि फिर भेंट होगी!'' सुभागी ने वेदना से कहा, ''और इस दशा में भेंट होगी!''

आनन्द ने प्रश्न भरी दृष्टि से सुभागी को देखा, कुछ बोला नहीं।

''बंती जीजी के स्वर्गवास के बाद हमारी कौन खोज करता!'' यह कह कर सुभागी कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही, फिर चौके में चली गयी।

रामानन्द ने धीरे–धीरे जमुना की बात, सुभागी और अपने विवाह की बात, अपनी गृहस्थी और अपने रोग की बात, सिकन्दरपुर की विपत्तियाँ और उसे छोड़ कर रामनगर आने तक की बात आनन्द को सुना दी। उसी समय सुभागी आयी। उस के मुख पर एक ऐसी आभा उभर आयी थी, जो मुस्कान के समय उभरती है।

उसने बच्चों की भाँति कहा, ''छोड़ो भी इन बातों को। चलों आज मेरे बाबू के संग चौके में खाना खाओ!''

आनन्द सुभागी के सामने अपने को उस बच्चे की तरह पा रहा था, जिसने अपनी माँ के प्रति बहुत बड़ा अपराध किया हो और उसे अब संतुष्ट करने के लिए वह अपने सारे दुराग्रह को पीकर, माँ के किसी भी संकेत को पालन करने में, अपने को धन्य समझ रहा हो।

केवल दाल–चावल को भोजन था। सब ने खाया। रात काफी बीत सुकी थी।

रामानन्द लँगड़ाता हुआ आनन्द को घर से बाहर तक छोड़ने आया। और सुभागी उसे हवेली तक छोड़ने आयी। अन्त में आनन्द भी न माना। वह सुभागी को उसके घर तक छोड़ने आया। आने–जाने तक के क्षणों में दोनों चुप थे।

''तू ने अपने मूँह से मुझे कुछ भी न बताया,'' आनन्द ने स्नेह से कहा, ''लेकिन तुम्हारे विषय में मैंने सब कुछ जान लिया!''

''सच!..... सुभागी सर झुकाए खड़ी थी, अभी सब कहाँ जाना है बाबू, अभी तो.....।'' फिर वह रो पड़ी। जल्दी आनन्द को विदा दी और अपने घर चली गयी।

आँगन में लालटेन जल रही थी। बुआ और आनन्द भोजन कर के कुर्सी पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। तहसीलदार साहब टहल कर देर से लौटे थे।

सुभागी भोजन की थाली लिए हुए तहसीलदार साहब के कमरे में गयी। उन्होंने पूर्वग्रह से सुभागी को देखा। वह झुक कर मेज पर थाली रख रही थी। तब तक उन्होंने आवेश में थाली को हाथ से झटक दिया। थाली झनझना कर फर्श पर टूट गयी और उसके बीच से तहसीलदार साहब की डाँटती हुई आवाज उभरने लगी,'' मैनें लाख बार समझाया कि जरा सफाई से खाना बनाया करो। अगर तुझे कपड़ा ही पहन कर खाना बनाना है तो मेरा सिलाया हुआ ब्लाउज तू क्यों नहीं पहनती?''

अभियोगी की भाँति सुभागी डरी हुई चुप खड़ी थी। बुआ ने कमरे में प्रवेश करते ही कहा, ''इसे वह ब्लाउज पसन्द नहीं है, मैं इस कल दूसरा ब्लाउज सिल दूँगी!''

सुभागी ने बैठकर टूटी–थाली में बिखरे हुए भोजन को सम्हाला और वह चुपचाप बाहर चली गयी।

आनन्द आँगन में बैठा देखता रहा। सुभागी ने अपने कपड़े बदले। फिर से वह चौके में गयी। और दुबारा वह भोजन बनाने बैठी। आनन्द के सामने सुभागी की बात एक दीवार की तरह शून्य में खिंच गयी– ''अभी सब कहाँ जाना बाबू!''

रात के ग्यारह बजे। सुभागी ने दुबारा, नया भोजन थाली में सजाया और उसे लिए हुए वह तहसीलदार साहब के कमरे में गयी। कमरा खाली था। मेज पर एक बोतल और खाली गिलास रखा था। कमरे का पिछला दरवाजा खुला था। सुभागी एक क्षण कमरे खड़ी रही। फिर उसने मेज पर थाली रख दी और पिछले दरवाजे से वह बाहरी कमरे को पार करती हुई दरवाजे पर गयी। तहसीलदार साहब बाहर टहजते हुए सिगरेट पी रहे थे।

सुभागी ने भोजन के लिए उन्हें बुलाया। वे कमरे में आकर भोजन करने के लिए बैठे।

''बोतल और गिलास को उस बक्स में रख दो!''

सुभागी ने उनकी आज्ञा पालन की। और कमरे से वह बाहर जाने लगी।

''रूको,'' उन्होंने कहा। सुभागी रूक गयी, लेकिन उसका मुख सीधे दीवार की तरफ था।

''मेरी तरफ देखो,'' उन्होंने खाते हुए कहा, और सुभागी को सीधे उनके सामने खड़ा होना पड़ा।

सुभागी ने अपने बँधे आँचल के नीचे दोनों हाथ डाले रक्खे थे। तहसीलदार साहब की पैनी दृष्टि उसके आँचल पर दौड़ी, लेकिन कहीं से भी वह दृष्टि आँचल के भीतर प्रविष्ट न हो सकी। जैसे, उस दृष्टि के जो हाथ थे, उनको सुभागी के आँचल के नीचे के हाथों ने तोड़ दिया था अतःएव उनकी दृष्टि उसके आँचल की ऊपरी सतह से ही फिसल कर झुक गई– सुभागी के पैरो पर।

वे कहने लगे, ''भोजन में सफाई का विशेष ध्यान है, फिर तो तुम बाह्मण हो।..... बुरा तो नहीं मान गयी। खुश–नाखुश अपने से ही हुआ जाता है..... ठीक है न!''

सुभागी कमरे से बाहर जाने लगी। तहसीलदार साहब ने उसे टोकते हुए फिर कहा, ''तू जा रही है सुभागी..... ओह.....ठीक है, अभी तुझे अपना खाना बनाना होगा न! लेकिन हाँ, ...एक बात सुन!''

सुभागी कमरे के दरवाजे पर खड़ी हो गई। उन्होंने बताया, ''कल शाम को रामानन्छ को खिलापिला कर आना। रात को तुझे यही रहना होगा। रत्ती कल गाँव जा रही है, परसों तक आ जायेगी। नहीं तो रात को प्यास बगैरह लगने पर पानी तक नहीं मिलेगा..... समझी!''

सुभागी घर जाने के लिए आँगन में खड़ी हुई। आनन्द आँगन में टहल रहा था। रत्ती नल से पानी खींच रही थी।

आनन्द रत्ती के पास गया और उसने पूछा,''कल तू अपने घर जा रही है?''

''हाँ बाबू, साहब ने खुद मुझे छुट्टी दी है, ''रत्ती ने बचपने के भाव से कहा, 66साहब ने कहा, जा रत्ती, कल तू अपने घर घूम आ!''

आनन्द चुप खड़ा था।

''क्यों बाबू क्या बात है, ''रत्ती ने अपना काम समाप्त करते हुए कहा, ''कोई काम हो तो मैं न जाऊँ, यहाँ से अच्छा मेरा घर थोड़े है।''

''ठीक है, कुछ नहीं, वैसे ही मैने पुछा।''

सुभागी के साथ आनन्द उसके घर आया तब तक रामानन्द सो गया था।

''आज तो बहुत देर हो गयी!'' आनन्द ने चिन्ता से कहा।

''कोई नयी बात नहीं!''

यह कहकर सुभागी चौके में गयी और आग जलाने लगी। आनन्द भी चौके में ही बैठ। सुभागी आटा गूँथने लगी। आनन्द आलू काटने लगा। आज की घटना के प्रकाश में आनन्द बातें करता रहा, पूछता रहा और सुभागी बताती भी रही।

रोटी सेंक चुकने के बाद सुभागी ने एक गहरी दृष्टि से आनन्द को देखा और उससे कहा, ''छोड़ो इन बातों को! इनसे तो मेरा कलेजा झाँझर हो गया.....सच, क्या बताऊँ!''

''तो!'' आनन्द ने पूछा।

''कोई ऐसी बात करो बाबू! जिससे मुझे हँसी आ जाए,'' सुभागी ने दीनता से कहा, ''नहीं तो मुझे हँसना भी भूल जायेगा!''

आनन्द के आँखों में आँसू उमड़ आए।

''न जाने कितने दिन हुए, उन्होंने एक दिन कहा था, 'सभागी! कभी–कभी गीत गा लिया करो, नहीं तो तुझे सब गीत भूल जायेंगे.....और जब तुझे गीत भूल जायेंगे....तब तुम.....तब तुम!''

इतना कहते–कहते सुभागी के मुँह पर जैसे, उसके हृदय का सारा रक्त उमड़ आया उसके सामने रामानन्द की वह वर्षों पुरानी तस्वीर आ गयी, जब उसने यह कहा था और उसका मुँह इसी तरह एकाएक सुर्ख हो गया।

''तब तुम ..... तब तुम क्या?'' आनन्द ने पूछा।

''कुछ नहीं, इतना ही उन्होंने कहा था,'' सुभागी ने अपने मुँह को आँचल से पोंछते हुए बताया, ''और उनकी बात सच निकली, आज मुझे सब गीत भूल गए!''

''लेकिन तुम हँसी नहीं भूल सकती।''

''क्यों?''

''क्योंकि तुम रोती जो हा!'' आनन्द ने थोड़ा रूकते हुए गंभीरता से कहा, ''ईश्वर ने जब मनुष्य को बनाया, तब वह ईश्वर के सामने आकर हँसने लगा। ईश्वर घबड़ा गया, अरे यह तो हँसता है। तब उसने मनुष्य को तत्काल रोने का भी अभिशाप दे दिया?''

बीच ही में सुभागी को हँसी आ गयी।

आनन्द ने मुस्कराते हुए कहने लगा, ''समूची सृष्टि में मनुष्य को छोड़ कर और कोई नहीं रोता, इसीलिए उसी को हँसह की जरूरत है, शेष को नहीं! जो रोता है, उसे ही जिन्दा रहने के लिए हँसी चाहिए!''

अगले दिन रत्ती अपने गाँव चली गयी। उस दिन सुभागी को बर्तन धोने से लेकर भोजन बनाने, बिस्तर लगाने और तहसीलदार साहब को खिलाने तक का काम करना पड़ा। जैसा कि तहसीलदार साहब ने कहा था, सुभागी को इतनी फुर्सत ही न मिली कि वह शाम को रामानन्द को खिला कर आए।

रात के बारह बज रहे थे। हवेली में सब अपने–अपने कमरे में सो गए थे। लेकिन आनन्द को, अब तक नींद न आयी थी। उसकी बंद आँखों में घुँधले–धुँधले बादल जैसा कुछ फैल रहा था और उस बहते हुए धुँधलके में हरी–पीली, लाल–काली और कभी–कभी एक ही साथ सतरंगी रेखाओं के बीच वह देख रहा था, जैसे सुभागी बहुत तेजी से कहीं भाग रही है। उसके विखरे हुए बाल हवा में फैले हें और पीछे से उन वालों को पकड़े हुए कोई उसे घसीट रहा है।

सहसा कमरे से सुभागी को पुकारती हुई कामता प्रसाद की आवास उभरी। आनन्द ने सुन कर भी चुप रहा। कई बार पुकारने के बाद वे कमरे से बाहर निकले, आँगन के बरामदे में आए, और एक कड़ी आवाज से उन्होंने फिर सुभागी को पुकारा।

आनन्द ने लालटेन की धीमी रोशनी को तेज किया और उसे लिए हुए वह कमरे से बाहर निकला।

''कहिए क्या जरूरत है?'' आनन्द ने पास आकर कहा, ''पीने के लिए पानी दूँ!''

''सुभागी कहाँ है?'' तहसीलदार साहब के स्वर में एक विचित्र सा दबाब था।

''वह तो घर गयी!''

''क्यों?.....कैसे गयी वह घर, किसकी इजाजत से गयी?''

''आपको सब मालूम है!'' आनन्द ने धीरे से कहा।

तहसीलदार साहब ने आग्नेय दृष्टि से उसकी ओर देखा।

''लेकिन कुछ तो बताइए'', आनन्द ने आदर से कहा, ''मैं तो हूँ ही।''

''वह तो मुझे मालूम है कि तुम हो और चारों ओर हो'', तहसीलदार साहब ने व्यंग्य को क्रोध में ढालते हुए कहा, ''बेहया कहीं के! तुझे शर्म नहीं आती!..... देख रहा हूँ, जब से लखनऊ से तू आया है...।''

नींद से जग कर पारो बुआ पास आ गयी। उसने एक क्षण तो दोनों को देखा, फिर पूछा, ''क्या हो रहा है यहाँ?''

''इन्हीं से पूछिए!'' आनन्द ने कामता प्रसाद की ओर देख कर बुआ की ओर देखा। फिर उसने दृष्टि नीचे गिरा ली।

''क्या बात हुई भइया?'' बुआ ने पूछा।

''कुछ नहीं।'' उन्होंने क्रोध से आनन्द की ओर देखा। न जाने किसे एक भद्दी सी गाली दी और झटके से अपने कमरे को बंद कर लिया।

दोपहर को उन्होनें खाना नहीं खाया। रात को बुआ ने उनके लिए भोजन तैयार किया, उन्होंने उसे भी खाने से इन्कार कर दिया। वे क्या चाहते थे, किस पर क्रोध था उन्हें, वे कुछ न बताते थे। बुआ मना कर हार गयी। उनके मित्र डाक्टर चड्ढा उन्हें, मनाने आए, लेकिन उन्होंने किसी की न मानी।

रात काफी बीत गयी थी, लेकिन अब तक किसीने भोजन नहीं किया था। सब उदास आँगन में बैठे थे। तहसीलदार साहब अपने कमरे में न जाने क्या पढ़ रहे थे।

''तो आप भी आज भोजन नहीं करेंगे? जैसे रोकर सुभागी ने आनन्द से पूछा।

''अब तो जब वे भोजन करेंगे, तभी मैं कर पाऊँगा'', आनन्द ने संयत स्वर में कहा, ''लेकिन अब तो तुम घर जाओ, रामानन्द रास्ता देख रहा होगा!''

सुभागी की आँखों में आँसुओं के बीच सहसा कुछ दीप्त हो उठा। वह झट से बुआ के कमरे में गयी। उसने अपने कपड़े उतार कर तहसीलदार साहब के दिये हुए पेटीकोट, रंगीन साड़ी और ब्लाउज तीनों को करीने से पहना। चौके में आयी, भोजन की थाली सजा कर वह यंत्रवत् कामता प्रसाद जी के कमरे में गयी। आँगन में बैठे हुए आनन्द, बुआ और रत्ती तीनों अपने–अपने में हतप्रभ से थे। कान खड़े कर तीनों कमरे की ओर देख रहे थे और, जैसे वे क्षण बिनते जा रहे थे।

धीरे–धीरे वे क्षण लम्बे होते गए। कमरे से कोई आवाज न उठी। कुछ फूटा नहीं, गिर कर कुछ टूटा नहीं। आनन्द आँगन से बढ़कर बरामदे में आया और उसने पर्दे के किनारे दे देखा। वे प्रसन्नता से भोजन कर रहे थे। सुभागी सामने जैसे, जकड़ी हुई खड़ी थी। उनकी आँखें उठती, सुभागी पर टिक जातीं, फिर उसी दृष्टि की प्रतिक्रिया उनकी आँखों में होती और होठों पर उनकी रेखाएँ उभर जाती।

आनन्द आँगन में लौट कर टहलने लगा। कुछ देर के बाद दरबाजे पर चला गया और सहन में बेमतलब घूमता रहा।

आधे घंटे के बाद जब वह भीतर लौटा, उसे पता चला कि सुभागी अपने घर चली गयी। आनन्द उसी पाँव सुभागी के घर गया। प्रवेश करते ही, उसने देखा, रामानन्द दीवार के सहारे, खाट पर बैठा है और सुभागी उसके पायताने मुँह के बल लेटी पड़ी है। रामानन्द अपने बायें हाथ से, उसके बिखरे बालों को सर पर संवार कर उसे सावधानी से आँचल से ढक रहा था।

आनन्द चुपचाप कमरे में आकर खड़ा हो गया। रामानन्द उसे देख कर स्वागत के भाव से इतना भर गया कि वह बिना कुछ बोले खाट से उठने का प्रयत्न करने लगा। आनन्द ने बढ़ कर उसे उठने से रोक लिया, तब रामानन्द ने सुभागी को जैसे, जगाते हुए कहा, ''सुभागी! उठ देख, आनन्द बाबू आए हैं!''

सुभागी चौक कर, बहुत तेजी से उठी और चीख कर रोते हुए उसने कहा, ''मैंने लाख बार तुमसे मना किया, तुम मुझे सुभागी न कहा करे!''

''फिर क्या कहूँ!'' रामानन्द ने भी स्वर में दीनता का स्पष्ट रूदन था।

''बिपती,..... मुझे बिपती कह कर पुकारो'', सुभागी अपने सहज रूदन को रोकने का प्रयत्न करती हुई कहने लगी, ''मेरी माँ ने मेरा नाम बिपती रक्खा था..... बंती माँ ने तेरा नाम सुभागी रक्खा था.....! अब मुझे कोई सुभागी न की!''

आत्मा के उसी आवेश में सुभागी ने अपना सर सामने दीवार से दे मारा। रामानन्द चीख पड़ा। आनन्द ने बढ़कर उसे बाहुओं से पकड़ लिया, ''यह क्या कर रही हो तुम!''

सुभागी का रूदन टूट चुका था। यद्यपि उसका मुँह आँसुओं से भीगा था। आँखें शान्त, लेकिन निस्तेज, निःस्पन्द हो रही थीं, जैस मन का तूफान थम गया था और वह निश्चेष्ट कहीं से धीरे–धीरे पृथ्वी पर उतर रही थी।

आनन्द अकेले चौके में गया, वहाँ कुछ न था, जलाने तक की लकड़ी न थी।

वह घर से निकल कर बाजार की ओर बढ़ने लगा। सुभागी ने दौड़ कर पीछे से उसका दायाँ हाथ पकड़ कर रोक लिया। बिना कुछ बोले, वह उसी तरह अपने दरवाजे पर लौट आयी। बरामदे में गयी, फिर वह खड़ी हुई, और आनन्द ने उसे देखा। वह कँप गया। सुभागी के माथे पर ठीक बीचों–बीच गोलाई में सूज आया था।

''यह क्या किया तूने!'' आनन्द ने अपनी दायीं हथेली से उसे ढक लिया।

''तब तूने वह क्यों कहा?'' आँसुओं से सुभागी का गला फिर रूँध गया।

''क्या कहा?''

''क्या कहा! क्या कहा!'' बच्चों की तरह क्रोध दिखाती हुई सुभागी ने कहा, ''जैसे भूल गए, कहा नहीं कि, ''अब तो जब वे भोजन करें, तभी मैं कर पाऊँगा!'' नहीं कहा था?''

''क्या बच्चों की तरह बात करती हो'', आनन्द ने कहा, ''तो क्या हो गया इससे?''

''कुछ नहीं!..... लोगों के लिए तो इतना ही हुआ कि उन्होंने भोजन कर लिया। लेकिन क्यों कर लिया?..... इसे मैं ही जानूँगी!'' सुभागी टूटते स्वर में कहती जा रही थी, ''वे जीते, मैं हार गयी। खाना खाकर उन्होंने थाली ही में हाथ धोया और मेरे ही आँचल में उन्होंने मुस्कराते हुए अपना हाथ पोंछा। वे रोज तो मुझे देखते ही थे। आज उन्होंने ब्लाउज की तारीफ करते हुए मुझे छुआ भी।''

यह कहते–कहते सुभागी ने अपना मुँह आनन्द के सीने में गड़ा दिया। वह निस्तेज चाड़ा रहा, जैसे उसके ऊपर बर्फ गिर रही थी।

''भोजन कर लिया?'' सुभागी ने सिसकियों में पूछा, ''बोलो! बोलते क्यों नहीं!''

''क्या बोलूँ..... बताओ!''

आनन्द कुछ देर तक निश्चेष्ट खड़ा रहा, फिर मुड़ते हुए उसने कहा, ''मैं अभी आया!''

कुछ ही क्षणों में आनन्द बाजार से लकड़ी, आटा–दाल–चावल वगैरह लादे लौटा, और चौके में रखते हुए उसे कहा, ''भोजन कर लेना, और माथे की चोट पर हल्दी रख लेना!''

यह कहकर आनन्द बाहर जाने लगा। उसने सुना, ''तब मैं कुछ नहीं करूँगी'' और उसे लौट आना पड़ा।

आग जली। भोजन बना। आनन्द ने उसकी चोट पर स्वयं पीस और गर्म कर हल्दी और प्याज रक्खी। और छुट्टी लेकर वह जाने लगा।

लेकिन जाते हुए आनन्द को देख कर वह रोकती हुई कहने लगी, ''मत जाओ, आज यहीं सो जाओ न! यह भी तो घर है.....आज न जाने क्यों मुझे बहुत भय लग रहा है!''

''घबड़ओं नहीं, रामानन्द तो यहीं है ही!''

यह कह कर आनन्द बहुत तेजी से सड़क की ओर मुड़ा और तेज कदमों से वह हवेली की ओर जाने लगा।

आनन्द हवेली के बरामदे में पहुँचा। चारों ओर सन्नाटा था। फिर उसकी दृष्टि आँगन में घूमते हुए तहसीलदार साहब पर पड़ी। दोनों एक दूसरे को देखकर रूके और क्षण भर के बाद आनन्द अपने कमरे की ओर बढ़ने लगा।

''रूको?'' आनन्द मुड़ कर खड़ा हो गया।

''रात के एक बज रहे हैं, और तुम यहाँ के तहसीलदार के लड़के हो!''

''मैं कुछ समझा नहीं।'' आनन्द ने संयत स्वर में कहा।

''नालायक, तुम समझोगे कैसे'', क्रोध से उन्होंने कहा, ''दिल और दिमाग पर तो कुछ और ही है।''

'' आप चाहते क्या हैं?'' आनन्द की वााणी में क्षोभ स्पष्ट था।

''सुबह ही लखनऊ लौट जाओ! तुम्हारे हक में यही अच्छा होगा।''

'' और अगर न जा सकूँ तो?''

''भूल गये अपनी हैसियत'', वे आनन्द के पास पहुँच गए और दोनों हाथों से हवा को चीरते हुए उन्होंने कहा, लखनऊ रहते हो तो क्या? एम0ए0 पास कर लिया है तो क्या?..... मारे जूतों के साले तुम्हारी खोपड़ी गंजी कर दूँगा।''

आनन्द चुप खड़ा था। तहसीलदार साहब की साँसे फूलने लगी थीं और वे काँपने लगे, ''बेंतों की मान भूल गयी!.... वह बेंत मेरे पास अब भी है!''

यह कहते हुए वे तेजी से अपने कमरे में गए, बेंत ढूँढने लगे। आनन्द की एक इच्छा हुई कि वह बढ़ कर उस कमरे को बाहर से बंद कर ले और उन्हें कमरे के भीतर चिल्लाने के लिए छोड़ दे। लेकिन वैसा किया नहीं।

काँपते हुए कामता प्रसाद, स्थिर आनन्द के सामने खड़े हो गए।

''अब निकालो कोई उल्टी–सीधी जबान। अब करो कोई गुस्ताखी!''

''आप ही सब कर लीजिए!''

''आप ही सब कर लीजिए! आप ही सब कर लीजिए!'' उन्होंने व्यंग्य करते हुए कहा, ''साले कल–कल के लौंडे! सबक पढ़ाते हैं..... हिलाओं कोई जवान? चुप क्यों हो गए?.... उसने आज कोई खातिर नहीं की क्या?''

''किस ने?''

''तुम्हारी मा''आप ही सब कर लीजिए!'' ने और किस ने!''

आनन्द कँप गया और क्रोध से बेसुध हो गया। उसका दायाँ हाथ उनके गले पर गया और बायें हाथ से उनकी बेंत छीन ली। उनके गले से एक ऐसी चीख आयी, जैसे कटघरे में बंद अकेली कोई बकरी चीखती है।

दौड़ी हुई बुआ आयी। रत्ती चिल्ला उठी। आनन्द के हाथों में वे गिड़गिड़ा रहे थे। एकाएक उसकी दृष्टि बुआ पर पड़ी। फिर उसके भिंचे हुए हाथ ढीले पड़ गए। बेंत जमीन पर गिर पड़ी। तहसीलदार साहब ने उसे आवेश में उठा लिया और इतने जोर से उन्होंने आनन्द के सर पर मारा कि वह बुआ को लिए हुए एक कदम आगे लड़चाड़ा गया।

उसका सर फूट गया और खून को देख कर बुआ कुछ क्षणों के लिए बेहोश हो गयी। और जब उसे सुधि आयी, और उल्टे आनन्द की गोद में उसने अपने सर को पाया, तब वह रोने लगी।

''अगर रोना है तो हवेली के बाहर जाकर रो आओ'', तहसीलदार साहब ने कमरे के दरवाजे पर आकर कहा, ''तुम लोग मुझे सोने दोगे कि नहीं!''

आनन्द ने जब दृष्टि उठाकर दरवाजे पर देखा, उस समय वहाँ कोई न था। उसकी आँखों में जैसे खून उबल रहा था और उसके बीच एक पूरी तस्वीर डील रही थी।

कामता प्रसाद हाथ में बेंत ताने भयानक हँसी बिखेरता हुआ खड़ा है और उसके सामने बन्दी की तरह सर झुकाए खड़ी हैं– पारो बुआ, बंती जीजी, जमुना और प्रभा। पास ही रामानन्द, आनन्द के साथ खड़ा है और दोनों चुपचाप कातर दृष्टि से एक दूसरे को देख रहे हैं।

दूसरे दिन जब सुभागी, रामानन्द और बुआ तीनों आनन्द को घेर कर बैठे थे, तब भी वह उसी चित्र को बार–बार अपने सामने से गुजरता हुआ देख रहा था।

दोपहर का खाना बना कर सुभागी आनन्द के लिए थाली लगाने लगी। वह आँगन में रामानन्द के पास बैठा था और बुआ चौकी पर बैठी हुई अब दातून कर रही थी।

आनन्द जब चौके में बैठने लगा, उसके मूँह से एकाएक एक प्रश्न निकला–''तुम इस तरह यहाँ कब तक खाना बनाओगी?''

''जब तक बाबू, आप यहाँ रहेंगे!'' सुभागी ने सहज भाव से कहा और सारी वेदना उसकी दृष्टि में उतर आयीं।

आनन्द चौथी रात के भोर में रामनगर से लखनऊ जाने लगा। रात का बस, धुँधला–धुँधला अँधेरा शेष था। वह घोड़े पर चढ़ा हुआ सड़क से उत्तरी बाग में प्रवेश कर रहा था। लेकिन उसे लग रहा था जैसे, वह घोड़े की पीठ पर नहीं बैठा है, बल्कि खड़ा है और घोड़ा उसके सर पर अपनी चारों टापों से खड़ा है, और वह बोझ उठाये हुए धीरे–धीरे आगे बढ़ने के लिए छटपटा रहा है।

सहसा आनन्द की दृष्टि सामने गयी। वह घोड़े से उतरा। सरजू को उसने रास थमा दी, और उसे आगे बढ़ चलने के लिए कहा।

रामानन्द कम्बल ओढ़े सड़क के किनारे बैठा था। सुभागी उसके सर पर हाथ रखे हुए खड़ी थी।

''यहाँ क्यों चले आए?'' आनन्द ने पास आते हुए कहा, ''मैं तो स्वयं तुम्हारे घर गया था।''

दोनों खड़े हो गए। सुभागी कुछ न बोली। तब रामानन्द ने कहा, ''आप तो हम लोगों से कल ही मिल आए थे। हमने रो भी लिया था। आपने यह भी कहा था कि आप आज के तड़के भोर में लखनऊ के लिए रवाना हो जाएँगे!''

''और मैंने यह भी तो कहा था'', आनन्द ने गिरी हुई वाणी से कहा, ''तुम सब घर पर ही रहना, मैं अकेले चला जाऊँगा। मुझे पहुँचना या छोड़ना क्या?''

''सो तो ठीक है बाबू! लेकिन तबियत न मानी!'' रामानन्द ने सर झुका लिया, ''हम लोग बाबू! दो घण्टे से यहीं बैठे हैं!''

सुभागी की खामोशी आनन्द के गले को सुखाती जा रही थी औश्र उसके अन्तःक्षितिज पर कुछ अबाध गति से बरसता जा रहा था।

''अच्छा, नमस्ते! फिर भेंट होगी!''

तब सुभागी ने चौंक कर आनन्द को देखा, एक अजीब मुद्रा–दृष्टि से। और आनन्द ने उसे देखा। उस क्षण सुभागी का निस्तेज मुख सफेद पड़ गया था। परन्तु अपनी निश्चेष्टता में मूक मुद्रा में उसे सौ–सौ वाणी की शक्ति मिल गयी थी। आनन्द को लग रहा था, जैसे उसके चारों ओर असंख्य सुभागी उसी करूण मुद्रा में खड़ी हैं। और वह सबकी वाणी सुन रहा है।

आनन्द ने फिर नमस्ते किया। फिर विदा माँगी। सुभागी के बंदी, निस्तेज हाथ एक बार उसके आँचल के नीचे कँपे, पर उठ न सके। आनन्द चला गया। सुभागी वही खड़ी रही और उसकी धुँधली दृष्टि में फिर वही स्वप्न चित्र उभरने लगा, जिसे सुभागी ने आनन्द के यहाँ आने से पूर्व देखा था–

विषैला साँप उसके गले में लटक उठता है। घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजकुमार आता है। उसके आगे–पीछे तमाम मोर नाच रहे हैं। राजकुमार उसके पास आता है। साँप भाग जाता है। मोर नाचते ही रह जाते हैं, लेकिन राजकुमार चला जाता है।

सुभागी ने मुड़ कर फिर सड़क की ओर देखा, रामनगर की ओर देखा और अन्त में उसकी दृष्टि रामानन्द में एकीकृत हो गयी।

उत्कर्ष

मृत्यु का एक अदृश्य रूप है, उसकी एक निश्चित अनुभूति है। इस पथ से ानव असंख्य वर्षों से चला जा रहा है। फिर भी वे इससे अपरिचित हैं, जिन्हें जीवन से घृणा नहीं हैं। और जिन्हें जीवन से घृणा हो जाती है, उनके सामने से मृत्यु का पर्दा फट जाता है। और वे अदृश्य मृत्यु को देख लेते हैं, उसका अनुभव पा जाते हैं, जब उनके सामने से मौत भागती है और जीवन उसे पकड़ने के लिए दिन रात दौड़ता फिरता है। और जब दोनों थक जाते हैं, तब उनके लिए मौत भी मर जाती है। मौत पीछे छूट जाती है और जीवन आगे बढ़ जाता है। क्योंकि मृत्यु गन्तव्य है, रूढ़ि है, एक स्थिर सीमा है और जीवन एक गति है, एक आकारहीन व्याकुल संकल्पना है।

सुभागी को अपने अंक में छिपाये हुए, आनन्द के दोनों हाथ अपने भावों में भिचे थे। घर में चारों ओर निविड़ अंधकार था। एक भयानक सन्नाटे में दोनों निबद्ध थे।

आनन्द ने चिराग जलाया। सुभागी के मुख को देखा। उसमें कहीं से भी रूदन न था, कोई प्रेरणा या गति न थी। उसका पूरा चेहरा उसी तरह सफेद हो गया था, जिसे क्षण भर के लिए आनन्द ने तब उस भोर में देखा था, जब उस बार वह सुभागी से विदा लेकर लखनऊ जा रहा था। आँखें स्पष्ट कह रही थीं, कि मानवता से मेरा विश्वास टूट गया, जीवन एक भयानक झूठ है, घृणा है, मुझे यह नहीं चाहिए।

सुभागी की आँखें आनन्द ने एक बार तक देखीं थीं, जब बाँसी में वह वंती जीजी के साथ थी। उनमें तब जीवन की एक चंचल तरलता थी। उन आँखों में प्रतिज्ञा के स्वप्न थे, विश्वास के डोरे थे। दूसरी आँखें उसने रामनगर में देखी थीं, रामानन्द के सामने। उनमें तब संघर्ष के आँसू थे, विद्राह था, आस्था थी। उनमें एक ऐसे ज्वलित प्रकाश की लहरें थीं, जो धधकती हुई ज्वाला में होती हैं। लगता था, रामानन्द जलता हुआ कोई यज्ञ कुण्ड है और सुभागी विश्वस्त, निश्चित, मौन, अपलक दृष्टि से उसे देख रही है और भरी हुई आँखों में अच्छे भविष्य की प्रतीक्षा कर रही है। उन्हीं आँखों को आनन्द सिकन्दरपुर में देख रहा था। उनमें अब कुछ न था। आँखें जैसे, बस केवल आकार थीं, मात्र ब्राह्म इन्द्रिय थीं और उनमें सब कुछ टूट कर नष्ट हो गया था।

रामनगर से चलकर, किसी तरह ढूँढ़ते–ढूँढ़ते आनन्द जब सुभागी के उजड़े घर में प्रविष्ट हुआ, और सुभागी को पुकारा, उसे कोई उत्तर न मिला था। कुछ क्षणों के बाद उसने देखा था कि किसी ने डर से चीख कर पास वाले कमरे को भीतर से एकाएक बन्द कर लिया था।

''मैं आनन्द हूँ सुभागी''

इस तरह आनन्द ने कई बार कहा था लेकिन वह चुप थी। आनन्द को अपनी बाहों में जकड़े हुए वह निश्चेष्ट पलकों से उसे तक रही थी।

खाली घड़ा लिए हुए आनन्द कुएँ पर गया। उसके पास डोर न थी। घड़ा रखकर वह मिसरी गोसाई के घर की ओर मुड़ा, तब तक उसने देखा, कोई औरत घड़ा–डोर लिए कुएँ पर आ रही थी।

''के कर पहुना हया भइया?'' औरत ने डोर देते हुए आनन्द से पूछा।

''सुभागी का .....क्यों?''

''पुनि वोकरे घड़ा कै पानी पीयब भइया!''

''क्यों क्या बात है?''

''जा भइया! जे अपने पति कै जहर दै के मार डालिस, आप वो कर बात चलाइथै.....राम–राम.....छिः..... छिः!''

आनन्द ने घड़ा भर लिया, डोर को दासें हाथ में बटोरा और क्रोध से उसने औरत की ओर फेंक दिया। औरत झुँझला कर बड़बड़ायी। आनन्द घड़ा लिए हुए चला गया।

सुभागी लगातार दो गिलास पानी पी गयी, फिर उसने आँखें मूँद ली और थोड़ी देर के बाद वह सो गयी। आनन्द फिर मिसरी गोसाई के घर गया और उनके साथ वह कुछ सीधा–पिसान, लकड़ी–तेल वगैरह लिए वापस लौटा।

चौके में उसने दूसरा चिराग जलाया। चूल्हा फूटा हुआ था। दो कच्ची ईंटों के बीच शायद किसी ने कल–परसों आग जलायी थी, और वह उसी तरह पड़ा था। उसी पर दो ईंटें और जोड़ कर आनन्द भोजन बनाने की तैयारी करने लगा। मिसरी गोसाई उसकी सहायता में पास ही बैठे थे।

, ''इस तरह से तो सुभागी आज–कल में मर गयी होती,'' आनन्द ने कहा, और चौके में से वह निराश गोसाई की ओर देखने लगा।

''बुआ मैं क्या करता'', उन्होंने उत्तर दिया, ''ये किसी तरह मानती ही न थीं, न दाना न पानी। कहती थीं, मुझे इसी तरह रहने दो, मेरे घर में कोई मत आए। मुझे डाँट बैठीं, फिर मैं क्या करता, बबुआ!''

''और यातना दो! और सताओ!!'' आनन्द ने धीरे से मंत्र की तरह कहा और वह चूल्हे की आग देखता रहा!

''बबुआ! मुझे भी क्या छोड़ा गाँव वालों ने'', गोसाई कहने लगे, ''दो बीधे धान की फसल काट गिरायी। मेरा पुआल फूँक दिया, किसी से कुछ रोता था, उलहाना देता था, उल्टे सभी ताने सुनाते थे कि तब तो खूब अच्छा लगा, मुफ्त में सुभागी का घर–द्वार, खेती–बारी लेते हुए, और गाँव भी से खिलाफ चल कर उसका साथ देते हुए, अब उसी को बुलाओ न! कहाँ तक बताऊँ बबुआ! मेरी गति बना दी इन सिकन्दरपुर वालों ने।''

''और आप उनकी चुपचाप सहते गए?'' आनन्द ने पूछा।

''और क्या करता बबुआ!'' उन्होंने बताया, ''चुप रहने पर तो खूँटे पर से ये गाँव वाले मेरे बैल खोल देते थे, और खेत में पड़ते ही लाठी लेकर गालियाँ देते हुए दरवाजे पर पिल आते थे। क्या–क्या रोऊँ बाबू! वह कितना अभागा है, जो गाँव में रहता है!''

''तुम अभागे नहीं हो गोसाई ये गाँव वाले अभागे हैं।'' गोसाई चुप थे।

आनन्द चुप रहा। चूल्हे की आग के सामने उसका चेहरा पूर्णतः तमतमाया हुआ था। पूरे शरीर पर, जैसे नन्ही–नन्ही चीटियाँ रेंग रही थीं।

थाली में चााना परोस कर आनन्द सुभागी के पास गया। उसे जगाया, हाथ–मुँह धुलाया और धीरे–धीरे उसे भोजन कराने लगा।

थोड़ा सा ही भोजन करने के बाद, सुभागी ने फिर एक गिलास पानी पिया और तुरन्त पेट थाम कर वह कराहने लगी।

पेट के दर्द से वह अंधी होने लगी। आनन्द कपड़े से सेंकने लगा और धीरे–धीरे उसकी कराह में शान्ति आने लगी। फिर कुछ देर के बाद आनन्द ने देखा, सुभागी की निस्तेज आँखें आँसुओं से भरती जा रही थीं।

अँधेरी रात थी। बाहर का वातावरण में सन्नाटा था। लेकिन घर के वातावरण में, झींगुर, करकच्ची, मच्छर और सुराख–बेवारों में बसे हुए कनतूतुर और मेंढ़क, सब अपनी–अपनी आवाजों से घर को भयानक बना रहे थे। आँगन–बरामदे और खुले हुए कमरों में चमकादड़ों के बच्चे उड़ रहे थे और चारों ओर ''चीकी'' ''चीकी'' कर रहे थे। लगता था, सुभागी का वह घर, घर नहीं था, उस गाँव में नहीं था, बल्कि वह सदियों का उजड़ा हुआ एक ऐसा खंडहर था, जो किसी बीरान टीले पर खड़ा हो।

सुभागी लेटी पड़ी, आनन्द सिरहाने बैठा था। कमरे का चिराग मंद पड़ गया था। सुभागी ने अपना दायाँ हाथ उठाया, आनन्द उसमें अपना दायाँ हाथ दे दिया। वह आनन्द का हाथ उसी तरह थामें रूकी रही, फिर उसे धीरे–धीरे अपनी पीठ पर ले गयी और वहाँ उसे छोड़ दिया।

दो लम्बी–लम्बी रेखाओं में पीठ सूजी हुई थी। सुभागी कराह कर औंधी हो गयी और उसने फिर आनन्द के बायें हाथ को पकड़ा और उसे अपनी दांयी बाँह पर ले जाकर उसने छोड़ दिया। वहाँ भी एक गोल सूजन थी।

यह सब तो ब्राह्म था, यह सब तहसीलदार और गाँव की आत्मा के साक्षी थे। और अन्तर में कितना था, कितने भाव थे?

आनन्द द्रष्टा की तरह सोचता रहा। उसकी दृष्टि, सूने कमरे में चक्कर काटते हुए नन्हे चमगादड़ के साथ दौड़ रही थी। वह उड़ता रहता, बार–बार सामने की दीवार से जैसे टकराता, लेकिन फिर भी उसके नन्हें पर चक्कर काटते रहते। कमरे के कोने में मकड़ी के घने जाले से लिपटता गया। फिर भी वह उड़ता रहा, चक्कर काटता रहा।

''बाबू!'' सुभागी ने धीरे से पुकारा।

''हाँ, बोलो।''

सुभागी चुप हो गई।

''कहो तो मैं इस गाँव में आग लगा दूँ!'' आनन्द सुभागी को बाँह से थामें आवेश में कहने लगा, ''रामनगर की हवेली फूँक दूँ, गला घोट दूँ उनका .....।''

''बाबू!'' सूनी दृष्टि के देखती हुई सुभागी काँप गई। और कोढ़ के अभिशाप की, माँ द्वारा दी गई व्याख्या उसके मस्तिष्क में कौंध गई। उसने रामानन्द को आग लगाने से रोका था.....और आनन्द .....तो क्या आनन्द भी.....। सुभागी की आँखें निःशब्द रोने लगी।

आनन्द ने निमिष मात्र उसकी आँखों की भयानक उदासी को देखा फिर उसके सर को उसने अपने दामन में टेक लिया और सामने शून्य में देखता हुआ वह कहने लगा, ''रोको नहीं सुभागी!..... मैं तुम्हारे एक–एक आँसू का प्रतिशोध ले सकता हूँ..... लेकिन क्या इससे हमारी आत्मा को शान्ति मिल जायेगी? हम पर किये गए अत्याचारों के भाव मिट जायेंगे? पुरैना या सिकन्दरपुर अकेले ही गाँव तो नहीं है और इनके क्रूर–कठोर, संकुचित–स्वार्थी बाशिन्दे और रामनगर के तहसीलदार तो अकेले विश्वासघाती नहीं, बल्कि यहाँ के सारे गाँव पुरैना–सिकन्दरपुर की तरह हैं। सबकी आत्माएँ विषाक्त हैं। रामनगर भी असंख्य हैं..... और तहसीलदार भी ..... रोओ नहीं, सुभागी..... धैर्य रक्खो.....।

आनन्द ने उसके खुले हुए सर को आँचल से ढक दिया, फिर उसे पहलू से लगाते हुए वह कहने लगा, ''वे हमें न बदल सके, न मार सके, यही हमारा उन सब को जबाब है–– प्रतिशोध है। और हमारा वही सात्विक प्रतिशोध उन्हें बदलने पर विवश करेगा। रोओ नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ, जो बीत चुका, तुम्हें हमेशा उससे घृणा थी। जो अभी बीता है, उसे भी बीत चुकने दो। इन सबको अपने पथ पर छोड़ कर, उठो! हम आगे बढ़ चलें–– एक नए जीवन में, एक नये संकल्प और भविष्य में.....।''

कुछ क्षण आनन्द उसी तरह शून्य में देखता हुआ अपने अंक से लगे हुए सुभागी के सर को सहलाता रहा, फिर उसने धीरे से कहा, ''सुभागी!.. ओ सुभागी!..... बोलो कुछ!''

''क्या कह रहे हेा!'' सुभागी ने सिसकते हुए कहा!

''मैं अकेला नहीं कह रहा हूँ?'' आनन्द उसकी आँखों में देखता हुआ कहने लगा, ''मेरे इस कहने और तुम्हारे सुनने के पीछे, जमुना, बंती जीजी, रामानन्द, सुभागी और आनन्द की शक्ति है, स्वप्ल है, संकल्प हैं।''

चिराग बुझने जा रहा था, शायद उसका तेल जल चुका था। आनन्द उठा। कडुवे तेल से भरी हुई कटोरी ही में उसने एक नयी बत्ती बनाकर डाल दी और उसे जलाकर दूसरे ताक पर रख दिया।

बुझते हुए चिराग को उसने उठाया, क्षण भर देखा और उसे नीचे जमीन पर जुढ़का दिया।

आनन्द सुभागी की खाट पर झुका हुआ उसकी चोट सेंक रहा था। सुभागी औंधी लेटी थी और वह अपनी बांयी कनपटी पर सर मोड़कर आँसुओं में डूबी हुई दांयी आँख से आनन्द को देख रही थी।

''मरते समय उन्होंने कहा था'', सुभागी कराहती हुई कहने लगी, ''मुझे ईश्वर ने नहीं, तहसीलदार ने मारा..... ।''

''और?'' आनन्द ने पूछा।

''और उन्होंने कहा था कि तम न मरना सुभागी, नहीं तो हम लोगों का सत्य मर जायेगा।''

आग के ऊपर गर्म तवे पर आनन्द कपड़े रक्खे हुए उसे सेंक कर रहा था औ उसका बायाँ हाथ सुभागी के सर पर था।

आनन्द कमरे के सन्नाटे में, सामने दृष्टि गड़ाये अपने अन्तःक्षितिज में देख रहा था। दीवार पर सुहाग की फटी हुई चुनरी फैली है। ऊपर छत की मोटी शहतीर से तहसीलदार के दोनों पैर बँधे हैं और उसका मुँह नीचे शून्य में लटक रहा है। आँखें निकल आयी हैं, मुँह से लार टपक रही है और उसके बीच से एक आर्त्त चीख उभर रही है, मुझे मत मारो। छोड़ दो मुझे.....छोड़ दो!

''कहीं कुछ जल रहा है!'' सुभागी ने झटके से सर उठाते हुए कहा। उसने देखा, तबे की आँच पर आनन्द के हाथ की पोटली जलने लगी थी। सुभागी ने चीख कर उसकी दांयी हथेली को खींच लिया। और उसे अपने अंक में छिपा लिया।

''हाथ जल गया न!''

''नहीं तो!'' आनन्द मुस्करा पड़ा।

''क्या सो रहे थे?..... बताओ न!..... बोलो!''

आनन्द जलते हुए चिराग की लौ देखने लगा, ''मैं कुछ सोच नहीं रहा था, देख रहा था।''

□□□□□